भारत कोकिला

सरोजिनी नायडू

भारत कोकिला
सरोजिनी नायडू

दिशा गुलाटी

ज्ञान गंगा, दिल्ली

प्रकाशक : ज्ञान गंगा, 2/42, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार : सुरक्षित / संस्करण : 2022 / मूल्य : दो सौ पचास रुपए
मुद्रक : आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली ISBN 978-93-80183-80-0

Bharat Kokila Sarojini Naidu by Smt. Disha Gulati ₹ 250.00
Published by **GYAN GANGA**
2/42, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110002

दो शब्द

नारी परिवार में ईश्वरीय दूत है। माँ, पत्नी, बहन, बेटी–किसी भी रूप में नारी अपने प्रेम एवं स्नेह से जीवन को सँवारती है। उसका शांतिप्रद मधुर स्नेह जीवन की कठोरता में सुखमय छाया की तरह है। वह ईश्वरीय प्रेम तथा वृफपा का प्रतिबिंब है, जो हमारे मानवीय स्वभाव एवं दया को सुदृढ़ करता है। नारी में करुणा और दयालुता की वह शक्ति है, जो मनुष्य वेफ सभी दु:ख नष्ट कर देती है। हममें से हर किसी में संस्कारों का आरंभ नारी द्वारा ही होता है। माँ का दुलार बच्चे को प्रेम, मानवता और दयालुता का पाठ पढ़ाता है तो पत्नी का प्रेम पति वेफ जीवन में आशा और विश्वास का संचार करता है। संक्षेप में, ईश्वरीय शक्ति नारी-रूप में ही सृष्टि को गतिमान रखते हुए वर्तमान को भविष्य से जोड़ने का कार्य करती है।

धार्मिक ग्रंथों में वर्णित है कि जब ईश्वर के मन में सृष्टि–रचना का विचार आया, तब उन्होंने सर्वप्रथम पंच महाभूतों से युक्त प्रकृति को प्रकट किया, चारों वेद, सप्तर्षि, आकाश, पृथ्वी, पेड़–पौधे, जल, अग्नि आदि की रचना की। तदंतर नर अर्थात् पुरुष को प्रकट किया। यह पुरुष 'मनु' कहलाया, परंतु भौतिक तत्त्वों एवं समस्त अवयवों से परिपूर्ण सृष्टि अभी भी अपूर्ण थी, इसमें प्रजनन शक्ति का अभाव था। बहुत सोच–विचार के बाद अंतत: ईश्वर ने इस अभाव को पूर्ण करने के लिए अपने अंश से आदिस्वरूपा नारी शक्ति को प्रकट किया। सृष्टि की यह प्रथम नारी 'शतरूपा' कहलाईं। उनके प्राकट्य के साथ ही प्रजनन शक्ति का उदय हुआ और फिर शनै:–शनै: सृष्टि का विस्तार होने लगा।

नारी सदियों से चली आ रही सामाजिक व्यवस्था का अभिन्न अंग है, जिसके बिना संसार अकल्पनीय है। दो अक्षर के इस छोटे से शब्द के पीछे छिपा सार इतना विस्तृत है कि संपूर्ण ज्ञान द्वारा भी इसे शब्दों की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। श्रीदेवीभागवत में नारी को परब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है। इस पुराण के अनुसार, 'सृष्टि उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक का संपूर्ण घटनाक्रम आदि–शक्ति द्वारा रचा गया है। सृष्टि के कण–कण में, फिर चाहे वह नर जीव ही क्यों न हो, नारी शक्ति अंशरूप में विद्यमान है।' संक्षेप में, यदि पुरुष को शरीर की संज्ञा दी जाए, तो निस्संदेह नारी उसमें आत्म–शक्ति के रूप में स्थापित है। नारी के व्यक्तित्व का यदि गहन अध्ययन किया जाए, तो उसके एक ही रूप में अनगिनत रूप सजीव हो उठते हैं–कभी माँ के रूप में वह बच्चों को ममत्व की छाँव देती है, तो कभी पत्नी–धर्म का पालन कर पति को आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक सुख प्रदान करती है, कभी बहन–रूप में भाई को सद्मार्ग की ओर प्रेरित करती है, तो कभी पुत्री–रूप में जन्म लेकर पिता के जीवन को सार्थक करती है। यद्यपि समाज में नारी के इन्हीं रूपों को पहचाना जाता है, परंतु कुछ नारियाँ ऐसी भी हुईं, जिन्होंने कभी दुर्गा व काली बनकर दैत्यों का संहार किया, तो कभी राधा बनकर संसार में नि:स्वार्थ प्रेम का

प्रसार किया। कभी सीता बनकर पति का अनुसरण किया, तो कभी सावित्री बनकर यमराज से भी टकरा गईं।

आदिकाल से समाज में पुरुषों का वर्चस्व रहा है, जिसके कारण इसे पुरुष-प्रधान समाज कहा गया। सहनशीलता, समर्पण, सेवा-भाव, नि:स्वार्थ प्रेम, ममत्व, धर्म-परायणता आदि गुणों की प्रतीकस्वरूप नारी शक्ति-संपन्न होते हुए भी पुरुषों द्वारा निर्धारित परिधि तक ही सीमित रही। उसे केवल भोग-विलास या वंश-परंपरा को आगे बढ़ाने का साधन माना गया, परंतु फिर भी समय-समय पर अनेक अवसर ऐसे भी आए, जब शक्ति-स्वरूपा नारी ने आगे आकर समाज का नेतृत्व किया।

इतिहास पर दृष्टि डालते ही ऐसे अनेक अद्‌भुत नारी-चरित्र सामने उभरकर आते हैं, जिनके नाम सुनहरे अक्षरों से लिखे गए, फिर चाहे वह लक्ष्मीबाई हो या रानी पद्‌मावती, कृष्ण की दीवानी मीरा हो या जीजाबाई। महान् नारियों की इस शृंखला में एक नाम ऐसा भी है जिसने सड़ी-गली व्यवस्था का विरोध करते हुए समाज में नए आयाम स्थापित किए तथा राष्ट्र-निर्माण में अभूतपूर्व योगदान देते हुए महिला-वर्ग का नेतृत्व किया।

'बुलबुल-ए-हिंद सरोजिनी नायडू' इतिहास के पन्नों में उल्लेखित सम्मानित नारी-व्यक्तित्व, जिनकी बहुमुखी प्रतिभा से समाज का प्रत्येक वर्ग प्रभावित हुआ। उन्होंने न केवल राष्ट्र में, बल्कि विश्व के कई देशों में नारी-शक्ति का नेतृत्व करते हुए प्रगतिवादी विचारों का प्रसार किया। स्वतंत्रता संग्राम में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान को किसी भी महान् नायक से कम करके नहीं आँका जा सकता। उनकी लेखनी ने विश्व-प्रसिद्ध साहित्यकारों एवं कवियों के मर्म को गहराई से छुआ। उनकी आवाज के जादू ने सामान्य जन में आजादी के लिए जोश जगाने का काम किया। यह उनके अद्‌भुत व्यक्तित्व का ही परिणाम था कि आज संपूर्ण विश्व इस महान् नारी से परिचित है।

भावुक कवयित्री, चतुर राजनीतिज्ञ, सहृदय समाज-सेविका, कुशल गृहिणी, ममतामयी माँ सरोजिनी की कल्पना करते ही अनगिनत रूप प्रकट हो उठते हैं। तत्कालीन समाज में जब नारी दारुण दु:ख भोग रही थी, तब उन्होंने ही उनके अधिकारों और शिक्षा के लिए आवाज उठाई। यह उनके अथक प्रयासों का परिणाम है कि कमजोर कहलाने वाली नारी आज सशक्त होकर समाज में अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही है। उनके द्वारा आरंभ किए गए कार्य आज भी समाज के लिए प्रेरणास्रोत हैं। संक्षेप में, साहित्य के साथ-साथ उन्होंने स्वयं को परोपकार और निस्वार्थ सेवा के लिए समर्पित कर दिया। जब भी राष्ट्र-निर्माताओं का उल्लेख होता है, सरोजिनी नायडू का नाम पूरे सम्मान के साथ लिया जाता है।

—दिशा गुलाटी

अनुक्रमणिका

1.	पारिवारिक इतिहास	9
2.	सरोज का खिलना	18
3.	नव-निर्माण की पहल	25
4.	'लव' और 'मेहर मुनीर'	29
5.	महान् विचारकों से मार्गदर्शन	33
6.	प्रेम का परिणय-सूत्र	42
7.	अस्वस्थता और काव्य-सृजन	48
8.	गोखले : गुरु और प्रणेता	51
9.	गांधीजी का सान्निध्य	56
10.	क्रूर आघात	59
11.	राजनीति की ओर	64

12.	रोलेट एक्ट का विरोध	69
13.	असहयोग आंदोलन	76
14.	कांग्रेस में फूट	82
15.	प्रथम महिला कांग्रेस अध्यक्ष	87
16.	'मदर इंडिया' का जहर	91
17.	पूर्ण स्वराज्य की माँग	95
18.	मुंबई में नजरबंद	99
19.	विश्वभारती की आचार्या	103
20.	विभाजन का दंश	107
21.	अंतिम पड़ाव	111
22.	संस्मरण	115
23.	महत्त्वपूर्ण व्याख्यान	123
24.	काव्य दर्शन	136
25.	काव्य कृतियाँ	140

1

पारिवारिक इतिहास

लोगों में सामान्यत: यह धारणा प्रचलित है कि शिशु का जीवन उसके जन्म के साथ आरंभ होता है। तदंतर उसके व्यक्तित्व को सुदृढ़ करने के लिए माता-पिता उसमें श्रेष्ठ संस्कारों एवं गुणों के बीज बोते हैं, लेकिन यदि ऐसा संभव होता, तो संसार के सभी व्यक्ति सद्‌गुणी, चरित्रवान, धर्म-परायण, ईमानदार, सत्यप्रिय तथा मानवीय गुणों से परिपूर्ण होते। इस आधार पर कुछ विद्वान् इस अवधारणा को नकारते हुए एक अलग मत प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार, स्त्री के गर्भ में पुरुष द्वारा अंश स्थापित करने के साथ ही शिशु का जीवन आरंभ हो जाता है। यही वह समय होता है, जब उसमें संस्कारों एवं गुणों का बीजारोपण होता है। वस्तुत: इसी प्रकार संस्कार पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक से दूसरे को प्राप्त होते हैं। बाद में शिशु-जन्म के उपरांत माता-पिता बीजरूपी इन संस्कारों को वृक्ष-रूप में विकसित करने का कार्य करते हैं। यदि संक्षेप में कहा जाए, तो शिशु को माता-पिता के ही अच्छे-बुरे संस्कार विरासत में मिलते हैं।

महानता की बात की जाए, तो विद्वानों के मतानुसार, इसके पीछे व्यक्ति के अथक परिश्रम एवं गुणों के साथ-साथ उसके परिवारजनों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्रारंभ में वे ही आत्मविश्वास और उत्साह का संचार करते हुए उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। इसके बाद व्यक्ति स्वयं ही अपने लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाता चला जाता है।

उपरोक्त दोनों कथनों के अनुसार, चाहे संस्कारों की बात हो या महानता की, माता-पिता का इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। उनके संस्कारों एवं महान् विचारों से पोषित मनुष्य समाज के लिए अमूल्य निधि बन जाता है। यही बात सरोजिनी नायडू के संदर्भ में भी कही जा सकती है। उनके जीवन और व्यक्तित्व में जिन विशेषताओं एवं संस्कारों का समावेश हुआ, वे उन्हें अपने माता-पिता से प्राप्त हुए थे। इसलिए उनके जीवन पर प्रकाश डालने से पूर्व उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि के बारे में जानना आवश्यक है।

अघोरनाथ का जीवन-संघर्ष

सन् 1850 में पूर्वी बंगाल के छोटे-से गाँव 'ब्रह्मनगर' में रहने वाले एक

निर्धन ब्राह्मण-परिवार में अघोरनाथ चट्टोपाध्याय का जन्म हुआ। पारिवारिक परंपरा के अनुसार बचपन से ही उन्हें संस्कृत की शिक्षा विरासत में मिली, हिंदू संस्कार उनमें कूट-कूटकर भरे हुए थे, परंतु धार्मिक वातावरण से ओत-प्रोत परिवार में रहते हुए भी धर्मांधता या ब्राह्मणवाद की जटिलताओं का उनमें लेशमात्र भी चिह्न नहीं था, अपितु नवीन विचारों को ग्रहण करके वे उन्हें जीवन के विभिन्न पक्षों में लागू करने के समर्थक थे। उन दिनों ब्राह्मण-परिवार के बालक थोड़ी-बहुत स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद पांडित्य के कार्य में लग जाते थे, परंतु अघोरनाथ सदियों से चली आ रही इस परंपरा को बदलने के लिए दृढ़-संकल्प थे। इसलिए स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए उन्होंने कलकत्ता (कोलकाता) विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया। रसायन शास्त्र में उनकी गहरी रुचि थी, अत: यही उनके अध्ययन का मुख्य विषय बना।

अघोरनाथ एक निर्धन परिवार से संबद्ध थे और जैसे-तैसे करके कलकत्ता पहुँचे थे। यहाँ रहने, खाने-पीने तथा पढ़ाई के लिए धन आवश्यक था, जिसकी व्यवस्था करने की जिम्मेदारी उनके कंधों पर थी। यद्यपि वे एक संबंधी के घर ठहरे हुए थे, लेकिन स्वाभिमानी अघोरनाथ को किसी पर बोझ बनना स्वीकार नहीं था। इसलिए वे शीघ्र ही धनार्जन का कोई उपाय ढूँढ़ लेना चाहते थे। इसी चिंता में कई मास बीत गए, लेकिन समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रही।

एक दिन एक मित्र ने उनसे पूछा, ''क्या तुम बच्चों को पढ़ाना चाहोगे?''

''किन बच्चों को पढ़ाना है?'' उन्होंने चौंककर पूछा।

''कॉलेज के निकट एक सेठ रहते हैं। उन्हें अपने बच्चों के लिए अध्यापक की आवश्यकता है। यदि तुम पढ़ाना चाहो, तो मैं उनसे बात कर सकता हूँ।''

अँधेरे में भटकते अघोरनाथ को रोशनी की किरण दिखाई देने लगी; उन्होंने सहमति दे दी।

अगले दिन से ही वे अध्यापन करने लगे। इससे प्राप्त होने वाली धनराशि पर्याप्त न होते हुए भी बहुत सहायक सिद्ध हुई। उनकी रहने एवं खाने-पीने की समस्या का समाधान हो गया था। आत्मनिर्भर होते ही उन्होंने एक छोटा-सा कमरा किराए पर ले लिया और अपनी पुस्तकें एवं बिस्तर लेकर वहाँ आ गए। उनके मन और आत्मा से जैसे बहुत बड़ा बोझ उतर गया था। अब वे एकाग्रचित्त होकर पढ़ाई पर ध्यान देने लगे।

पुस्तकें खरीदना निर्धन अघोरनाथ के वश में नहीं था। अत: वे पुस्तकालय से पुस्तकें लाकर पढ़ा करते। यदा-कदा मित्रों से पुस्तकें उधार माँगकर वे किसी

प्रकार अध्ययन-कार्य पूर्ण कर लेते। दिन भर व्यस्त रहने वाले अघोरनाथ को पढ़ने के लिए रात को ही समय मिलता था। चूँकि घर में बिजली नहीं थी, ऐसे में घर के सामने की सड़क पर लगा बिजली का खंभा उनके अध्ययन का प्रमुख स्थान बना। दैनिक कार्यों से निवृत्त होने के बाद वे पुस्तकें उठाते और खंभे के नीचे आलथी-पालथी मारकर अध्ययन में जुट जाते। आते-जाते लोग उनकी अध्ययनशीलता को देखकर मन-ही-मन उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करते थे।

शीघ्र ही परिश्रम, लगन एवं योग्यता के बल पर वे प्रोफेसरों के प्रिय छात्र बन गए, पढ़ाई के लिए उनकी एकाग्रता को देखकर अकसर प्रोफेसर कहा करते थे, ''हमने बहुत से छात्रों को शिक्षित किया है, अनेक छात्रों को सफलता का शिखर चूमते देखा है, लेकिन अघोरनाथ उन सबसे अलग है। निश्चय ही निम्नतम बिंदु से उठा यह युवक सफलता के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचेगा।''

विश्वविद्यालय में शिक्षा अर्जित करने के साथ-साथ अघोरनाथ ने अनेक विदेशी भाषाओं का भी गहन अध्ययन किया। उन्होंने ग्रीक, जर्मनी, हिब्रू, फ्रेंच तथा रूसी भाषाएँ सीखीं। इन पर उनकी पकड़ इतनी सशक्त थी कि आगे चलकर वे महान् भाषाविद् बने।

वरदा सुंदरी का जीवन-वृत्त

बंगाल से निकलती ब्रह्मपुत्र नदी वहाँ के जीवन एवं समृद्धि का मुख्य आधार है। इसे भारत की परम् पुण्यमयी तथा पवित्र नदियों में से एक कहा गया है। इसके तट पर बने असंख्य मंदिरों में गूँजती घंटे-घड़ियालों की आवाज, आरती के स्वर और स्नान करते भक्तजनों की भक्तिधारा नदी की जलधारा में समाहित होकर दिव्य स्वरूप का सृजन करते हैं। जिस स्थान पर ब्रह्मपुत्र और सागर का मिलन होता है, पुराणों में वह स्थान पापों का नाश करके पुण्यों में वृद्धि करने वाला कहा गया है। इस पुण्यमय संगम पर प्रतिदिन असंख्य लोग सूर्य के दर्शन, जल-अर्पण एवं स्नान करते हैं।

इसी संगम पर नाव में बैठी नौ वर्षीय एक कन्या विभिन्न हाव-भाव दिखाते हुए खेलने में व्यस्त थी। उसका रंग-रूप धूप में खिले फूल की तरह चमक रहा था। बालों की लंबी लटें उलझकर बार-बार चेहरे को घेर रही थीं। पानी की लहरों की तरह उछलती-थिरकती उसकी इस निर्मल चंचलता को नाव में बैठा चौदह वर्षीय एक बालक बड़ी उत्सुकता से देख रहा था। कभी उसके होंठों पर मुसकराहट दिखने

लगती, तो कभी यकायक हँसी आ जाती, तभी कन्या की दृष्टि बालक पर पड़ी। उसे हँसते देखकर लज्जावश वह एक ओर बैठ गई।

उस कन्या का नाम 'वरदा सुंदरी' था, जबकि उसे निहारने वाला बालक 'अघोरनाथ' था। दोनों अपने-अपने परिवार के साथ वहाँ भ्रमण करने आए थे। चूँकि दोनों परिवार एक-दूसरे को जानते थे, अतः वे भी एक-दूसरे से थोड़े-बहुत परिचित थे। अघोरनाथ मन-ही-मन वरदा सुंदरी को पसंद करते थे। उनकी पसंद कब उनका प्यार बन गई, इसका उन्हें कभी आभास तक नहीं हुआ। आगे चलकर उन्होंने इस प्रेम को विवाह का रूप दे दिया।

पति की तरह वरदा सुंदरी भी सर्वगुणसंपन्न थीं। वे सहनशील, धर्म-परायण, मधुरभाषिणी, संतोषी, पति-सेवा को धर्म मनाने वाली, दयालु तथा कोमल स्वभाव की महिला थीं। उनमें एक ऐसा गुण भी था, जो तत्कालीन महिलाओं में मिलना अत्यंत दुर्लभ था, वह गुण था, 'भारतीय संस्कृति का अनुसरण करते हुए नवीन सामाजिक विचारों को स्वीकारना।' ऐसा नहीं है कि उन्होंने नवीन विचारों को केवल स्वीकारने तक ही सीमित रखा, बल्कि समय आने पर अपने जीवन में भी अपनाया।

वरदा सुंदरी जहाँ एक कुशल गृहिणी थीं, वहीं वे एक भावुक कवयित्री भी थीं। समय पाते ही उनके मनोभाव लेखनी के माध्यम से कागज पर उतरने लगते। उन्होंने बंगला भाषा में अनेक गीतों एवं कविताओं की रचना की। वे एक कुशल संगीतकार भी थीं। अपने गीतों को विभिन्न वाद्यों द्वारा सुर देना उन्हें भली-भाँति आता था। वे अनेक संस्थाओं एवं जरूरतमंद लोगों की सहायता भी किया करती थीं।

जीवनसंगिनी के रूप में वरदा सुंदरी को पाकर अघोरनाथ का जीवन धन्य हो गया। उनकी गृहस्थी सुखपूर्वक चलने लगी।

भारत के 'प्रथम डॉक्टरेट'

कलकत्ता विश्वविद्यालय में अध्ययन करते हुए अघोरनाथ ने रसायन शास्त्र की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उनके शोध-कार्यों से प्रभावित होकर कॉलेज ने उन्हें छात्रवृत्ति दी। तदंतर आगे की पढ़ाई के लिए वे इंग्लैंड चले गए। वहाँ उन्होंने एडिनबरा यूनिवर्सिटी में दाखिला ले लिया और भौतिकी का अध्ययन करने लगे।

वर्ष 1877 भारतीय इतिहास के गौरवशाली वर्षों में से एक है। यह वह वर्ष था, जब अघोरनाथ चट्टोपाध्याय ने भौतिकी का अध्ययन पूर्ण कर एडिनबरा यूनिवर्सिटी से 'डॉक्टरेट' की डिग्री प्राप्त की। यह उपाधि प्राप्त करने वाले वे प्रथम

भारतीय थे। इसके साथ ही उनका नाम इतिहास के सुनहरे पन्नों में सदा के लिए अंकित हो गया। डॉक्टरेट के अतिरिक्त उन्होंने प्रतिष्ठित 'बेक्सटर' तथा 'होप' पुरस्कार भी प्राप्त किए।

पढ़ाई पूरी होने के बाद अघोरनाथ जर्मनी चले गए। वहाँ जर्मन वैज्ञानिकों ने उनके शोध-कार्यों के महत्त्व को स्वीकारते हुए उनकी भरपूर सराहना की। तदंतर वे भारत लौट आए। इस बीच वरदा सुंदरी प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी केशवचंद्र सेन के आश्रम में रहते हुए सामाजिक व्यवस्था तथा उसमें व्याप्त दोषों का गहन अध्ययन कर रही थीं। इससे उनमें समाज-संबद्ध परिवर्तनकारी विचारों का उदय हुआ।

वैज्ञानिक से अध्यापक

1857 के विद्रोह के बाद भारत में शासन की बागडोर पूरी तरह से ब्रिटिश सरकार के हाथों में आ चुकी थी। गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा भारतीय समाज अपमान, तिरस्कार और प्रताड़ना के वातावरण में साँसें ले रहा था। सरकार की दमनकारी नीतियों ने भारतवासियों के सम्मान को बुरी तरह से कुचल दिया था। ऐसी स्थिति में भारत लौटे अघोरनाथ के लिए सामाजिक दायित्व से मुख मोड़कर विज्ञान की सेवा करना असंभव था। इसलिए समाज-कल्याण के लिए उन्होंने विज्ञान की साधना छोड़कर अध्यापक बनने का निश्चय कर लिया।

उनके इस निश्चय से तत्कालीन भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु तथा पी. सी. राय सकते में रह गए। उनकी प्रतिभा से भली-भाँति परिचित होने के कारण उन्हें विश्वास था कि युवा अघोरनाथ विज्ञान के क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित करेंगे, लेकिन सबकी आशाओं के विपरीत उन्होंने विज्ञान को अलविदा कहने का मन बना लिया था। उन्होंने अघोरनाथ को समझाने का बहुत प्रयास किया, लेकिन उनके लिए सुखमय जीवन की अपेक्षा संघर्ष की अग्नि में जलना अधिक सम्मानीय था। वे अपने निश्चय पर अडिग रहे। इस निर्णय में वरदा सुंदरी भी उनके साथ थीं।

अंततः सन् 1878 में वे पत्नीसहित हैदराबाद आ गए और एक स्कूल में अध्यापन करने लगे।

'निजाम कॉलेज' की स्थापना

अघोरनाथ ने कुछ ही दिनों में हैदराबाद के तत्कालीन निजाम का विश्वास प्राप्त कर लिया। वे उनकी विद्वत्ता और विचारों के प्रशंसक थे। निजाम के दीवान सर

सालार जंग भी उनसे बड़े प्रभावित थे। शीघ्र ही दोनों में गहरी मित्रता हो गई। अघोरनाथ द्वारा चलाई गई शिक्षा-संबंधी योजनाओं में वे विशेष रुचि लेते थे। उनके सहयोग से अघोरनाथ ने 'न्यू हैदराबाद कॉलेज' की स्थापना की, जिसमें उन्होंने प्रधानाचार्य का कार्यभार सँभाला। इस कॉलेज में शिक्षण हेतु नई-नई पद्धतियों को अपनाया गया। आगे चलकर यह कॉलेज 'निजाम कॉलेज' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महिला कॉलेज की स्थापना

तत्कालीन भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यंत शोचनीय एवं दयनीय थी। उन्हें परदों में रखा जाता था, उनका दहलीज से बाहर पैर रखना अपमान की बात समझी जाती थी। उनके लिए न तो शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी और न ही सुधार के उपयुक्त अवसर थे। यदि यह कहा जाए तो अधिक सटीक होगा कि वे पुरुषों पर निर्भर होकर उनकी अधीनस्थ थीं।

दिन-प्रतिदिन बिगड़ती सामाजिक दशा ने अघोरनाथ को उनके बारे में सोचने के लिए विवश कर दिया। इस संबंध में उन्होंने वरदा सुंदरी के साथ विचार-विमर्श किया।

''महिलाओं को शिक्षित करके ही उनकी स्थिति को सुधारा जा सकता है। इसलिए सर्वप्रथम उन्हें शिक्षित करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।'' वरदा सुंदरी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था।

बात उचित थी। शीघ्र ही अघोरनाथ ने पत्नी एवं मित्रों की सहायता से एक महिला कॉलेज की स्थापना की। उस्मानिया विश्वविद्यालय से संबद्ध इस कॉलेज ने नारी-शिक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

नारी-समाज एवं शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. अघोरनाथ द्वारा किए गए अभूतपूर्व कार्यों ने उन्हें हैदराबाद में एक सम्मानित और प्रसिद्ध व्यक्ति बना दिया। निजाम शाही रोड पर स्थित उनका घर धीरे-धीरे कवियों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों, प्रोफेसरों तथा हिंदू-मुसलिम-ईसाई विचारकों का अभिव्यक्ति स्थल बन गया। वहाँ प्रतिदिन कोई-न-कोई बैठक आयोजित होती रहती थी, जिसमें अतिथिगण स्वादिष्ट व्यंजनों के साथ-साथ संगीत का लुत्फ भी उठाते। भोजन के बाद विभिन्न विषयों पर देर रात तक विचार-विमर्श चलता रहता।

समाज के प्रतिष्ठित वर्ग में डॉ. अघोरनाथ महान् दार्शनिक, वैज्ञानिक और विचारक के रूप में पहचाने जाने लगे थे।

सार्वभौमिक प्रभुता संधि

1857 के विद्रोह ने अंग्रेजों को भविष्य के लिए सतर्क कर दिया था। यदि विद्रोह की योजना में असंतुलन उत्पन्न न होता, तो निश्चय ही उन्हें भारत छोड़कर जाना पड़ता। ऐसे किसी भी विद्रोह की पुनरावृत्ति रोकने के लिए सरकार ने एक नई नीति अपनाई, जिसके अंतर्गत देशी नरेशों के साथ 'सार्वभौमिक प्रभुता संधि' की गई। इसके अनुसार राज्य की शासन-व्यवस्था ब्रिटिश सरकार के एक उच्चाधिकारी की देखरेख में चलाई जाती थी। इससे न तो नए कानून लागू किए जा सकते थे और न ही ऐसी गतिविधियों का संचालन किया जा सकता था, जो सरकार-विरोधी हों। सरकार ने हैदराबाद के साथ भी यह संधि की और एक अधिकारी को निजाम के दरबार में नियुक्त कर दिया।

पलायन और वापसी

जब तक दीवान सालार जंग जीवित रहे, ब्रिटिश अधिकारी चाहकर भी कुछ नहीं कर सका, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद मानो उसके मार्ग का काँटा हट गया। वह खुलकर प्रशासनिक व्यवस्था में मनमाना हस्तक्षेप करने लगा। उसने ऐसी सभी सामाजिक गतिविधियों पर रोक लगा दी, जिससे सरकार-विरोधी वातावरण तैयार हो सकता था। अघोरनाथ के घर होने वाली बैठकों की उसे भली-भाँति जानकारी थी। उनमें उच्चकोटि के विचारकों, साहित्यकारों, प्रोफेसरों आदि के सम्मिलित होने की बात उसे रह-रहकर खटकती थी। उनकी राष्ट्रभक्ति और सुधारक-प्रवृत्ति का भी उसे अच्छी तरह से ज्ञान था। उनकी मित्रता मुल्ला अब्दुल कय्यूम जैसे अनेक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी आंदोलनकारियों के साथ थी। वे इतने लोकप्रिय थे कि उनके आह्वान मात्र पर जनसमूह सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार रहता था।

ब्रिटिश अधिकारी को भय था कि भविष्य में ये बैठकें सरकार के लिए जी का जंजाल बन जाएँगी। अत: निजाम पर दबाव डालकर उसने न केवल अघोरनाथ को उनके पद से निलंबित करवाया, बल्कि उनके घर में होने वाली बैठकें भी प्रतिबंधित करा दीं। तदंतर विभिन्न हथकंडे अपनाते हुए उनके मनोबल को तोड़ने का प्रयास करने लगा। इसी तरह मुल्ला अब्दुल कय्यूम को भी मानसिक रूप से प्रताड़ित एवं अपमानित किया गया।

इन बदलती परिस्थितियों में अघोरनाथ असहज अनुभव कर रहे थे। सरकार

को राष्ट्रवादी आंदोलनकारियों के साथ उनका मेल-मिलाप रास नहीं आ रहा था, जबकि वे इससे अलग नहीं हो सकते थे। अंततः काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने हैदराबाद छोड़ दिया। उनके पीछे-पीछे अब्दुल कय्यूम भी हैदराबाद छोड़कर चले गए।

इस घटना ने साधारण जनमानस को व्यथित कर दिया। वे सड़कों पर उतरकर विरोध प्रदर्शन करने लगे। सरकार ने दमनकारी नीतियों द्वारा विरोध को कुचलने का भरसक प्रयत्न किया, परंतु वे मर-मिटने के लिए तैयार थे। अंततः ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा। अपने घनिष्ठ मित्र अब्दुल कय्यूम को साथ लेकर अघोरनाथ हैदराबाद लौट आए और अपने पद पर नियुक्त होकर पुनः अध्यापन करने लगे। इसके साथ ही उन्होंने सामाजिक गतिविधियाँ भी तेज कर दीं।

महान् क्रांतिकारी मुल्ला अब्दुल कय्यूम का व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावशाली था। उनकी और अघोरनाथ की प्रगाढ़ मित्रता के संदर्भ में सरोजिनी ने लिखा था–

''मुल्ला अब्दुल कय्यूम साहब के सम्मान में अनेक हाथों से गूँथी संस्मरण माला में अपने स्नेहरूपी पुष्प को संजोते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। उनका महान् व्यक्तित्व मेरे बाल्यकाल की स्मृतियों का अभिन्न अंग है। जन्म, शिक्षा, सांस्कृतिक और धार्मिक आधार पर सर्वथा भिन्न दो व्यक्तियों के बीच ऐसी मित्रता एवं सामंजस्य विरले ही देखने को मिलता है, जैसाकि इन दो प्रसिद्ध एवं प्रभावशाली व्यक्तियों के बीच था।

दोनों महापुरुष प्रखर बुद्धिमान, विचारक, ज्ञानवान, उदार और चरित्रवान थे। असत्य, अन्याय, अनाचार जैसे तत्त्वों के विरुद्ध उनके मन में सदैव संघर्ष की अग्नि प्रज्वलित रहती थी। अज्ञान, दरिद्रता, शोषण तथा दमन की भीषण बुराइयों से समाज को उबारने के लिए वे दृढ़ संकल्प थे। इसके लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया। वे दोनों महान् देशभक्त थे और भारत से अगाध प्रेम करते थे। देशभक्ति से ओत-प्रोत उनका मन देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए आशावान था। उन्हें विश्वास था कि एक दिन राष्ट्र विदेशी पराधीनता से अवश्य मुक्त होगा।

उस समय मैं बहुत छोटी थी, इसलिए उनके चरित्र की उत्कृष्टता और आस्था के महत्त्व से अनभिज्ञ थी। उनका सही मूल्यांकन मेरे लिए असंभव था। बहुत वर्षों बाद तक भी मैं यह नहीं सोच सकी थी कि उन जैसे लोग भले ही

भारतीय पुनर्जागरण के अत्यंत प्रसिद्ध अग्रदूत न हों, लेकिन वे उसके प्रारंभिक अग्रदूत अवश्य थे।''

राजनीतिक संगठन की स्थापना

डॉ. अघोरनाथ ने राजनीतिक चेतना के साथ-साथ समाज-सुधार में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने न केवल समाज के निम्न वर्गों के लिए पुनर्जागरण का मार्ग प्रशस्त किया, बल्कि नारी-उत्थान के लिए अनेक कार्य किए।

वे एक ऐसे संगठन की स्थापना करना चाहते थे, जो राजनीतिक स्तर पर कार्य करते हुए समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करे। उन्होंने इस विषय में मुल्ला अब्दुल कय्यूम से विचार-विमर्श किया। तदंतर दोनों मित्रों ने मिलकर शीघ्र ही ऐसे राजनीतिक संगठन की स्थापना कर डाली, जिसमें बुद्धिजीवी वर्ग के साथ-साथ राष्ट्रवादी आंदोलन से जुड़े लोग भी सम्मिलित थे। इसका कार्य सरकारी नीतियों के कारण समाज पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को शांतिपूर्ण ढंग से सरकार के समक्ष रखना था।

आगे चलकर इस संगठन ने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' का रूप ले लिया।

□

सरोज का खिलना

2

कड़ाके की ठंड ने पूरे भारत को अपने आगोश में भर लिया था। बहती सर्द हवाएँ वातावरण को और भी ठंडा कर रही थीं। प्रकृति का स्वभाव परिवर्तनशील है। समय के साथ इसका बदलता स्वरूप आस-पास के दृश्य भी बदल देता है। मौसम की दृष्टि से भारत को अत्यंत समृद्ध देश कहा जाता है। इसका एक छोर सुप्त भावनाओं की तरह बहुत ठंडा है तो दूसरा छोर अपने आँचल में गरमाहट समेटे है। कन्याकुमारी से चलने वाली गरम हवाएँ कश्मीर तक पहुँचते-पहुँचते जहाँ अपनी तपिश खो बैठती हैं, वहीं कश्मीर से बहने वाली सर्द हवाएँ दूसरे छोर तक पहुँचते हुए क्षीण हो जाती हैं। यही कारण है कि ऋतु-परिवर्तन का समय लगभग एक समान होते हुए भी भारत में विभिन्न स्थानों पर इसका प्रभाव भिन्न-भिन्न हो जाता है।

हैदराबाद भारत के उन शहरों में से एक है, जहाँ सर्द-गरम हवाओं का मिलन वातावरण को सुहावना बना देता है, लेकिन इस बार की सर्दी ने यहाँ भी लोगों को गरम कपड़े पहनने के लिए मजबूर कर दिया था। मौसम की ठंडक उँगलियों के पोरों पर अपने निशान छोड़ रही थी, शरीर की ठिठुरन टूटने के आसार नहीं थे। कई दिनों तक सूरज के न दिखने से अपने-अपने घरों में दुबके हुए लोग आग की तपिश से जैसे-तैसे काम चला रहे थे। ऐसे में एक दिन सूरज का बादलों के पीछे से निकल आना अन्य लोगों के साथ-साथ वरदा सुंदरी के चेहरे पर भी मुसकराहट का कारण बन गया। मार्ग में आने वाले हर अवरोध को भेदती हुई सूर्य-किरणें इस सुंदर शहर की ठिठुरन तोड़ने लगीं।

वरदा गर्भवती थीं, नौवाँ महीना चल रहा था। डॉक्टर ने संतुलित आहार के साथ-साथ आराम की सख्त हिदायत देकर उन्हें कक्ष तक सीमित कर दिया था। यह बात वे जैसे-तैसे भूल भी जातीं, लेकिन अघोरनाथ डॉक्टर से भी दो कदम आगे थे। उन्होंने उसकी हिदायत अच्छी तरह से गाँठ बाँध ली थी। वे जब तक घर में रहते, वरदा को बिस्तर से उठने नहीं देते। स्थिति को देखते हुए उन्होंने एक परिचारिका भी रख ली थी, जो वरदा के सारे काम स्वयं कर देती।

धूप थोड़ी और खिली तो सिर उठाकर आकाश की ओर देखते हुए फूलों पर भँवरे मँडराने लगे। चिड़ियाँ चहचहाती हुई अपनी खुशी प्रदर्शित करने लगीं। वरदा कक्ष की खिड़की से इस दृश्य को एकटक देख रही थीं। अन्य पशु-पक्षियों

की तरह धूप का फैला हुआ आँचल उन्हें भी अपने में समा जाने के लिए आमंत्रित कर रहा था। वरदा को प्रकृति से बहुत लगाव था। बचपन में उनका अधिकांश समय बाग में आम तोड़ते या नदी के बहते पानी में पैर डालकर अठखेलियाँ करते हुए बीतता था। घास पर नंगे पैर चलते हुए उन्होंने तब न जाने कितने रास्तों को नाप डाला था। चिड़ियों को दाना डालना, बकरी के बच्चे को गोद में लेकर सहलाना, सखियों के साथ झूला झूलना, सावन की बारिश में भीगना, कितना कुछ था, जो उनकी यादों का हिस्सा था।

'वे दिन कितने निर्मल, सुहावने और अमूल्य होते हैं। न खाने की चिंता, न जिम्मेदारियों का बोझ, पहाड़ी नदी की तरह बिलकुल अल्हड़, मस्त, जीवन के हर रंग को छूकर बह जाने वाले। वे दिन भला अब कहाँ?' वरदा ने ठंडी आह भरी।

हैदराबाद में आए उन्हें कुछ ही महीने हुए थे, परंतु उन्हें देखकर लगता था मानो वे वर्षों से इस शहर में रह रहे हों। शुरू में परेशानियाँ जरूर हुईं, परंतु धीरे-धीरे सब स्थिर होता चला गया। यहाँ की आबोहवा ने उन्हें जल्द ही अपने रंग में रंग लिया था। कॉलेज में नियुक्त होकर अघोरनाथ अध्यापन करने लगे, जबकि वरदा ने गृहस्थी का दायित्व सँभाल लिया।

दोपहर हो चुकी थी, लेकिन अघोरनाथ अभी कॉलेज से लौटे नहीं थे। वरदा उन्हीं की प्रतीक्षा कर रही थीं।

'शायद कोई काम पड़ गया होगा।', यह सोचकर उन्होंने अपना ध्यान आँगन में चहकते पक्षियों की ओर लगा दिया।

उनका मन ताजी खिली धूप में बैठने के लिए बार-बार मचल रहा था। अत: शॉल लपेटकर वे बगीचे में रखी कुरसी पर आकर बैठ गईं। धूप का स्पर्श पाकर उनका सुस्त शरीर ताजगी महसूस करने लगा।

मनोभावों को कविताओं के रूप में कागज पर उतारने का सिलसिला यौवन की दहलीज पर पैर रखते ही शुरू हो चुका था। विवाह होने तक तथा उसके बाद भी वे न जाने कितनी भावनाओं को स्याही का रंग दे चुकी थीं, लेकिन जीवन की आपाधापी के चलते पिछले कुछ महीनों से उन्होंने अपनी लेखन-प्रवृत्ति को किसी कोने में दबा दिया था। कितने दिनों के बाद आज फिर कुछ लिखने के लिए उनका मन मचल रहा था। इसलिए अपने साथ वे डायरी और कलम भी लेती आई थीं।

एक बार कलम चलना शुरू हुई, तो अबाध गति से निरंतर चलती रही, फिर न खाने-पीने का होश रहा और न ही कंधों से सरक चुकी शॉल का, मानो वे अपने सारे दबे हुए भाव कागज पर उतार देना चाहती थीं।

सहसा कंधे पर हाथ का गरम स्पर्श अनुभव हुआ और कानों में स्नेहयुक्त आवाज गूँजी, ''इतनी ठंड में तुम यहाँ क्या कर रही हो वरदा?''

वरदा ने चौंककर आवाज की दिशा में देखा। पास खड़े अघोरनाथ मुसकराते हुए उन्हें शॉल ओढ़ा रहे थे। धूप ढल चुकी थी, सूरज बादलों के पीछे छिपने की तैयारी कर रहा था। लिखने में वे इतनी तल्लीन थीं कि दोपहर कब संध्या में बदल गई, इसका उन्हें आभास तक नहीं हुआ था।

''आप कब आए?'' वरदा ने हड़बड़ाकर पूछा।

''जब तुम सुध-बुध खोकर लिखने में मग्न थी, लेकिन तुम्हें यहाँ नहीं आना चाहिए था। बाहर कितनी ठंड है।'' अघोरनाथ ने प्रेम-भरी झिड़की दी।

''मुझे घुटन महसूस हो रही थी। इसलिए मैं यहाँ आकर बैठ गई। आप जानते ही हैं, मैं कमरे में बंद नहीं रह सकती। इससे स्वस्थ होने के बदले मैं और अधिक अस्वस्थ हो जाऊँगी।''

मासूमियत भरा जवाब सुनकर वे हँसते हुए बोले, ''मैं तुम्हारा प्रकृति-प्रेम जानता हूँ, लेकिन क्या करूँ, डॉक्टर ने तुम्हें आराम करने के लिए कहा है। चलो, अब अंदर चलो।''

अघोरनाथ उन्हें कमरे में ले आए और बिस्तर पर लिटाकर पास ही बैठ गए, तभी उन्हें वरदा के हाथ में चिर-परिचित डायरी दिखाई दी। उन्होंने उत्सुक होकर पूछा, ''क्या लिखा है आज?''

''मन में कुछ पंक्तियाँ उभर रही थीं। उन्हें बस ज्यों-का-त्यों कागज पर उतारा है।''

''वरदा! तुम जैसी समझदार, विचारवान, स्नेहयुक्त पत्नी पाकर मैं संपूर्ण हो गया हूँ। तुमने मुझे एक नया ध्येय, एक नई दिशा, एक नई सोच दी है। मुझे विश्वास है कि हमारी संतान में तुम्हारे इन संस्कारों का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। ठीक वैसे ही, जैसे अभिमन्यु में हुआ था। तुम इस शिशु के लिए सुभद्रा बनोगी।''

''अभिमन्यु! सुभद्रा! आज आप ये कैसी बातें कर रहे हैं?''

अघोरनाथ बिना रुके बोलते जा रहे थे, ''चक्रव्यूह विद्या को जानने वाले केवल दो महापुरुष थे, गुरु द्रोणाचार्य और अर्जुन। महाभारत युद्ध में जब द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना कर पांडवों को ललकारा था, तब अर्जुन की अनुपस्थिति में अभिमन्यु ने चुनौती स्वीकार कर पांडव-वंश की लाज रखी थी, उनके मान-सम्मान को बढ़ाया था। अभिमन्यु ऐसा इसलिए कर सके, क्योंकि उन्होंने माता सुभद्रा के गर्भ में रहते हुए ही चक्रव्यूह-विद्या का अधिकांश ज्ञान प्राप्त कर लिया था। ठीक

वैसे ही यह शिशु तुम्हारे गर्भ में रहकर तुम्हारे संस्कारों एवं गुणों को ग्रहण कर रहा है। तुम्हारे द्वारा इसके जीवन का उद्देश्य निर्धारित होगा; इसका उज्ज्वल भविष्य तुम्हारे आचार-विचार पर आधारित है। वरदा, यह शिशु हमारे नाम को संसार भर में अमर कर देगा।''

भावावेश में आकर वरदा पति के साथ लिपट गईं और धीरे से बोलीं, ''आपकी यह बात जरूर सच होगी। हमारे संस्कारों से फलित यह पुष्प अपनी सुगंध से संसार को मोह लेगा।''

ईश्वर ने मानो 'तथास्तु' कहकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

पुत्री-जन्म

13 फरवरी, 1879 वरदा का दर्द निरंतर बढ़ता जा रहा था। अघोरनाथ समझ गए थे कि शिशु-जन्म का शुभ समय आ चुका है। अत: शीघ्र ही वे दाई को ले आए। पड़ोस की दो बुजुर्ग महिलाएँ पहले से ही सहायता के लिए वहाँ आ चुकी थीं। पीड़ा असहनीय हुई, तो उन्होंने दरवाजा अंदर से बंद कर लिया।

अघोरनाथ बेचैनी के साथ बाहर टहल रहे थे। रह-रहकर कमरे से उठने वाली कराहों के स्वर उनके मन को और भी व्याकुल कर देते। उनकी आँखें दरवाजे पर लगी हुई थीं, जबकि कान शुभ समाचार सुनने के लिए आतुर थे, लेकिन काफी समय बीत जाने के बाद भी उनकी प्रतीक्षा पूर्ववत् बनी रही। उनका धैर्य जवाब देने लगा। सहसा दर्द भरी कराहें बंद हो गईं और उनका स्थान शिशु-रुदन ने ले लिया। अघोरनाथ का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा।

थोड़ी देर बाद दरवाजा खुला और दाई ने कपड़े में लिपटा एक शिशु लाकर अघोरनाथ को थमा दिया।

''बधाई हो! लक्ष्मी ने जन्म लिया है।'' दाई ने होंठों पर मुसकराहट लाते हुए कहा।

यह वह समय था, जब भारतीय समुदाय में कन्या-जन्म को अभिशाप समझकर मातम मनाया जाता था। इसलिए दाई को विश्वास था कि अन्य लोगों की तरह कन्या-जन्म की बात सुनकर सामने खड़ा युवक भी दु:खी हो जाएगा। ऐसे में इनाम की आशा तो दूर उसे पारिश्रमिक मिलना भी मुश्किल प्रतीत हो रहा था। यही सोचकर वह मन-ही-मन खिन्न थी।

लेकिन उसकी सोच के विपरीत कन्या-जन्म की बात सुनकर अघोरनाथ

का हृदय पितृ-स्नेह से उमड़ आया और वे शिशु को सीने से लगाकर चूमने लगे, जेब से मुट्ठी भर सिक्के निकालकर दाई को पकड़ाते हुए बोले, ''तुमने मेरे जीवन को आज सुगंधित कर दिया है। तुम्हारा ऋण मैं कभी नहीं चुका सकता। मेरी पुत्री के जन्म पर तुम्हारे लिए यह छोटा सा इनाम।''

दाई की आँखें आश्चर्य से फटी रह गईं। कन्या-जन्म पर उसे इतना इनाम मिलेगा, जितना कभी पुत्र-जन्म पर भी नहीं मिला, उसने कभी इसकी कल्पना भी नहीं की थी। पिता-पुत्री की बलाएँ लेती हुई वह वहाँ से चली गई।

'इससे दुनिया महकेगी'

डॉ. अघोरनाथ का घर दुलहन की तरह सजा हुआ था। घर का कोना-कोना फूलों एवं मांगलिक चिह्नों से सुसज्जित कर दिया गया था। उनकी प्रसन्नता छिपाए नहीं छिपती थी; आज उनकी पुत्री का नामकरण-उत्सव था। आँगन में लगा पंडाल मित्रों एवं सगे-संबंधियों से खचाखच भर चुका था। स्वादिष्ट बंगाली और हैदराबादी व्यंजनों की घुली-मिली खुशबू वातावरण को महका रही थी।

मंडप के बीचोबीच बैठा पुरोहित कन्या की कुंडली लिए कुछ गणनाएँ करने में लीन था। पास बैठे अघोरनाथ उसके चेहरे पर उभरते भावों को पढ़ने की असफल कोशिश कर रहे थे। शुभ मुहूर्त्त में पुत्री को लेकर वरदा मंडप में आईं और पति के निकट बैठ गईं।

निर्धारित समय पर कार्यक्रम आरंभ हुआ।

नामकरण से संबंधित रीतियाँ संपन्न करने के बाद पुरोहित अघोरनाथ को संबोधित करते हुए बोला, ''यजमान, मैंने आपकी पुत्री की कुंडली का बहुत गहराई से अध्ययन किया है। सच कहूँ तो जीवन में मैंने कभी ऐसी कुंडली नहीं देखी।'' यह कहकर वह चुप हो गया।

इस चुप्पी ने अघोरनाथ को विचलित कर दिया। किसी अनहोनी की आशंका से वे सिहर उठे। उन्होंने व्याकुल होकर पूछा, ''पुरोहितजी, कुंडली में सब ठीक तो है न?''

उनकी व्याकुलता को पुरोहित ने भी महसूस किया। वह मुसकराते हुए बोला, ''चिंता की कोई बात नहीं है। आपकी पुत्री की कुंडली बड़ी अद्‌भुत है। बृहस्पति और बुध इसमें इतने सुदृढ़ हैं कि उनके प्रभाव से बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसके समक्ष निष्प्रभावी हो जाएँगे। संक्षेप में केवल इतना ही कहूँगा कि आपके घर लक्ष्मी

ने नहीं, बल्कि माँ सरस्वती ने जन्म लिया है। इसकी लेखनी और वाक्-कला संसार को सम्मोहित कर देगी। इसके अदम्य साहस और निडरता से शत्रु-पक्ष भयभीत रहेगा। अपने कार्यों से इसका नाम सदा के लिए अमर हो जाएगा। इसके लिए 'स' अक्षर सर्वोत्तम है।''

अघोरनाथ प्रसन्नता से खिल उठे। वे पुत्री को गोद में लेते हुए बोले, ''तो फिर इसका नाम 'सरोजिनी' होगा। जैसे कमल अपनी कोमलता और सुंदरता से लोगों को आकर्षित करता है, वैसे ही मेरी सरोज के संस्कार एवं गुण लोगों का मार्गदर्शन करेंगे। सरोज···मेरी सरोजिनी···इससे दुनिया महकेगी।''

इस प्रकार कन्या का नाम 'सरोजिनी' रखा गया। स्नेहवश माता-पिता उसे 'सरोज' कहकर बुलाते थे।

विलक्षण भाई-बहन

सरोजिनी माता-पिता की एकमात्र संतान नहीं थी। उसके जन्म के उपरांत अघोरनाथ के घर वीरेंद्रनाथ, भूपेंद्रनाथ, रणेंद्रनाथ एवं हरींद्रनाथ नामक चार पुत्रों तथा मृणालिनी, सुनालिनी व सुहासिनी नामक तीन पुत्रियों ने जन्म लिया। सरोजिनी की तरह उनका व्यक्तित्व भी बड़ा विलक्षण और अद्‌भुत था। पारिवारिक संस्कार उनमें कूट-कूटकर भरे हुए थे। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

वीरेंद्रनाथ डॉ. अघोरनाथ की दूसरी संतान थे। उनका जन्म सन् 1880 में हुआ। क्रांतिकारी विचारों ने आरंभ से ही उन्हें प्रभावित किया था। यही कारण है कि युवा होने पर उन्होंने क्रांति का मार्ग चुना। उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों एवं विचारोत्तेजक व्याख्यानों ने ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ा दी थी। उनके बढ़ते प्रभाव से भयभीत होकर सरकार ने उन्हें देश-निकाला दे दिया। वे जर्मनी चले गए, लेकिन वहाँ रहते हुए भी उन्होंने क्रांति की मशाल जलाए रखी। उनके जीवन एवं कार्यों से प्रभावित होकर प्रसिद्ध जर्मन लेखक ने उनकी जीवनी लिखी। वर्ष 1942 में उनका देहांत हो गया। उग्रपंथी वीरेंद्रनाथ का नाम देश के महान् क्रांतिकारियों में सम्मान के साथ लिया जाता है।

सन् 1882 में वरदा सुंदरी ने तीसरी संतान को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया, **भूपेंद्रनाथ**। पढ़ने-लिखने में अग्रणी तथा बुद्धिमान भूपेंद्र में शिक्षा के प्रति विशेष लगाव था। उनका अधिकांश समय अध्ययन में व्यतीत होता था। सदैव प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले भूपेंद्र हैदराबाद में सहायक महालेखाधिकारी के पद पर नियुक्त हुए। इस महत्त्वपूर्ण पद पर रहते हुए उन्होंने पिता की तरह जन-कल्याण के

अनेक कार्य किए।

मृणालिनी का जन्म सन् 1883 में हुआ। प्यार से उन्हें 'गुन्नू' कहकर बुलाया जाता था। उन्होंने लंदन की कैब्रिज यूनिवर्सिटी से विज्ञान में ऑनर्स की उपाधि प्राप्त की, फिर भारत लौटकर पिता की तरह अध्यापन का क्षेत्र चुना। कुछ समय तक कॉलेज में अध्यापन करने के बाद वे लाहौर के महिला कॉलेज की प्रधानाचार्य बनीं। अविवाहित रहकर उन्होंने अपना जीवन शिक्षा के लिए समर्पित कर दिया।

सात साल के बाद सन् 1890 में **सुनालिनी** का जन्म हुआ। प्रारंभ से उनका रुझान नृत्य की ओर था। कई वर्षों तक उन्होंने कला की कठोर साधना की। इसके फलस्वरूप वे महान् नृत्यांगना हुईं। उनके उत्कृष्ट नृत्य-कौशल ने उन्हें तत्कालीन महान् कलाकारों में प्रतिष्ठित किया।

रणेंद्रनाथ का जन्म वर्ष 1895 में हुआ। बड़े भाई वीरेंद्र की तरह उनमें भी देशभक्ति कूट-कूटकर भरी हुई थी। देश के लिए वे बड़े-से-बड़ा कार्य करने से भी पीछे नहीं हटते थे। उनका संपूर्ण जीवन समाज-सेवा में व्यतीत हुआ। उन्होंने ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध अनेक आंदोलनों का नेतृत्व किया।

सन् 1898 में **हरींद्रनाथ** का जन्म हुआ। उनमें सरोजिनी के अधिकतर गुण विद्यमान थे। न केवल काव्य कला में उन्हें महारत हासिल थी, वरन् वे नाटककार के रूप में भी प्रसिद्ध हुए। उनके द्वारा रचित कविताओं एवं नाटकों पर फिल्म जगत् के सुप्रसिद्ध निर्माता-निर्देशकों ने कार्य किया। इसके अतिरिक्त उनमें एक गुण और भी था, उनकी गिनती रंगमंच के सक्रिय कलाकारों में होती थी। उन्होंने 'बावर्ची' फिल्म में परिवार के मुखिया का किरदार निभाकर अपने सशक्त अभिनय का प्रणाम प्रस्तुत किया था। इसके अतिरिक्त और भी अनेक फिल्में कीं। उनका निधन वर्ष 1990 में हुआ।

सुहासिनी, अघोरनाथ की आठवीं और अंतिम संतान थी। उसका जन्म सन् 1901 में हुआ। सातों भाई-बहनों के गुणों से परिपूर्ण सुहासिनी समाज-सेवा, कला तथा शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी रहीं।

इस प्रकार महान् माता-पिता की आठों संतानें विलक्षण गुणों से युक्त होकर महानता की परिभाषा बनीं।

□

3 नव-निर्माण की पहल

'मनुष्य को नव-निर्माण की पहल सर्वप्रथम स्वयं के घर-परिवार से करनी चाहिए।'—विद्वानों द्वारा कही गई इस उक्ति के मर्म को गहन विवेचन द्वारा सहजता से समझा जा सकता है। जो विचारक अथवा सुधारक अपने पारिवारिक सदस्यों को जागरूक करके उन्हें नव-निर्माण के लिए प्रेरित नहीं कर सकता, उससे समाज-सुधार की उम्मीद रखना व्यर्थ है। विचारों का प्रवाह घर के प्रांगण से होकर समाज के बीच पहुँचना चाहिए। वस्तुतः घर के सदस्य उसके लिए उन जड़ों का काम करते हैं, जो नव-निर्माण के समय उठने वाली आँधियों में मजबूती से उसे थामे रहते हैं।

बहु-विवाह, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा आदि कुरीतियों से युक्त तत्कालीन भारतीय समाज नारी-शिक्षा तथा उसके उत्थान का प्रबल विरोधी था। लोगों के मस्तिष्क में नारी की छवि दासी से अधिक नहीं थी। पिता के घर से लाकर उन्हें गाय की भाँति ससुराल में बाँध दिया जाता, फिर वे तन-मन से पति और उसके परिवार की सेवा करते हुए जीवन गुजार देती थीं। न तो उनकी इच्छाओं का ध्यान रखा जाता था और न ही समाज में उन्हें मान-सम्मान प्राप्त था। यद्यपि समाज अनेक जातियों एवं वर्गों में बँटा हुआ था, तथापि नारी के संबंध में उनके रूढ़िवादी विचार लगभग एक समान थे।

ऐसी विषम परिस्थितियों में डॉ. अघोरनाथ ने हैदराबाद में महिला कॉलेज की स्थापना कर सराहनीय कार्य किया। इसमें वरदा सुंदरी भी उनके साथ थीं। घर-घर जाकर वे लड़कियों को शिक्षा दिलवाने के लिए महिलाओं को प्रेरित करती थीं। उनके प्रयत्नों के कारण कुछ ही दिनों में कॉलेज में लड़कियाँ पढ़ने आने लगीं।

अघोरनाथ ऐसे व्यक्तियों में से नहीं थे, जो स्वयं या अपने परिवार को एक ओर रखकर समाज-सुधार की बात करते थे, बल्कि वे किसी भी नव-विचार को सर्वप्रथम स्वयं पर लागू करना चाहते थे। वे अकसर कहा करते थे, ''सुधार की जो लहर मेरे घर से आरंभ होगी, उसे मैं बड़ी सहजता से समाज की ओर प्रवाहित कर सकता हूँ। इससे लोगों के सम्मुख एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत होगा। इसमें संदेह नहीं कि वे मेरे सुधारवादी कार्यों की आलोचना करेंगे, लेकिन यह भी सत्य है कि इसके लिए उन्हें एक बार इसका चिंतन-मनन जरूर करना पड़ेगा। इससे ही परिवर्तन का दौर आरंभ होगा।''

शिक्षा का आरंभ

सरोजिनी के कुछ बड़ी होने पर अघोरनाथ ने उसकी शिक्षा की व्यवस्था कर दी। वे स्वयं उसे पढ़ाते थे। वरदा सुंदरी का भी उन्हें भरपूर सहयोग मिला। जिस दिन उन्हें समय नहीं मिलता, उस दिन वे ही नन्ही सरोजिनी को अध्ययन करवाती थीं। अघोरनाथ की इच्छा थी कि शिक्षा के क्षेत्र में उनकी पुत्री इतनी सशक्त बने कि भारतीय नारी उसकी प्रेरणा लेकर स्वयं के उत्थान के लिए प्रयत्नशील हो। इसलिए भारतीय भाषाओं के साथ-साथ उन्होंने अंग्रेजी एवं फ्रेंच भाषाएँ पढ़ाने के लिए भी अध्यापिकाएँ नियुक्त कर दीं।

इस प्रकार सरोजिनी की प्रारंभिक शिक्षा माता-पिता की देखरेख में हुई।

शिक्षा के संदर्भ में अघोरनाथ का कथन था, ''यदि मेरे बच्चे अपनी बुद्धि के बल पर जीवित नहीं रह सकते, तो उनका जीवित रहना व्यर्थ है।''

कक्षा में प्रथम आने की अपेक्षा वे बौद्धिक ज्ञान को अधिक महत्त्व देते थे। वे सरोजिनी से अकसर कहा करते थे, ''शिक्षा मनुष्य की बुद्धि को विकसित कर उसके सुविचारों को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करती है। ज्ञान केवल प्राप्ति तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि गहराई से इसे आत्मसात् करना अधिक आवश्यक है।''

एक दिन की सजा

अघोरनाथ चाहते थे कि सरोजिनी पढ़-लिखकर भारत की प्रथम महिला गणितज्ञ अथवा वैज्ञानिक बने। इसके लिए अंग्रेजी का ज्ञान जरूरी था। अत: उन्होंने एक अंग्रेज अध्यापिका नियुक्त की। वे स्वयं भी उसे अंग्रेजी में बात करने के लिए प्रोत्साहित करते थे, परंतु सरोजिनी को यह विषय बहुत उबाऊ लगता था। इसलिए वह अंग्रेजी बोलने से बचती थी। लाड़ली होने के कारण पिता की बात अनसुनी कर देना उसे खूब आता था।

लेकिन एक बार अंग्रेजी में पूछे गए प्रश्न का हिंदी में उत्तर सुनकर अघोरनाथ को गुस्सा आ गया और उन्होंने उसे पूरे दिन के लिए एक कमरे में बंद कर दिया।

एक दिन की इस सजा ने सरोजिनी का जीवन पूरी तरह बदल दिया। अब वह अंग्रेजी में रुचि लेने लगी। अथक परिश्रम द्वारा जल्दी ही नौ वर्षीय सरोजिनी ने

इस विषय में महारत हासिल कर ली, लेकिन फिर भी वह अपनी माता से सामान्य बोलचाल की भाषा में ही बात करती थी।

प्रतिभाशाली सरोजिनी

घर में होने वाली परिचर्चाओं के माध्यम से सरोजिनी ने विज्ञान, राजनीति, दर्शनशास्त्र, गणित आदि की शिक्षा सहज ही प्राप्त कर ली थी। उसकी स्मरणशक्ति इतनी तीव्र थी कि प्रत्येक विषय का छोटे-से-छोटा बिंदु भी उसे भली-भाँति याद रहता था। इसी प्रतिभा को देखकर अघोरनाथ उसे मैट्रिक करवाने के इच्छुक थे, लेकिन हैदराबाद में कोई हाईस्कूल नहीं था, जहाँ से वह मैट्रिक की परीक्षा दे सकती।

अन्य राज्यों की अपेक्षा मद्रास (चेन्नई) में उन दिनों शिक्षा का स्तर उच्च था। वहाँ कई शिक्षण संस्थाएँ खुल चुकी थीं। वहाँ एक विश्वविद्यालय भी स्थापित हुआ था, जिसमें छात्राएँ दाखिला लेकर मैट्रिक की परीक्षा दे सकती थीं। अत: काफी सोच-विचार के बाद अघोरनाथ ने सरोजिनी को शिक्षा हेतु मद्रास भेजने का निश्चय कर लिया।

यद्यपि वरदा अपनी लाड़ली को आँखों से दूर नहीं करना चाहती थीं, तथापि उसके उज्ज्वल भविष्य को देखते हुए उन्होंने हृदय पर पत्थर रखकर सहमति दे दी। आनन-फानन में सारी व्यवस्थाएँ की गईं।

सरोजिनी में पढ़ने की ललक बचपन से ही थी। अत: मद्रास पहुँचते ही वह पढ़ाई में डूब गई। शिक्षित पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण उसका बौद्धिक विकास अन्य विद्यार्थियों की तुलना में अधिक था। पिता के सान्निध्य में रहने के कारण विभिन्न विषयों में उसका ज्ञान पहले से ही विकसित था। इसलिए जिस पाठ को याद करने में दूसरों को कई-कई दिन लग जाते, उसे वह कुछ ही घंटों में याद कर लेती थी। उसकी इस प्रतिभा ने अध्यापकों को भी मोहित-सा कर लिया। वे कहा करते थे, ''आज के समाज में सरोजिनी जैसी छात्रा विरले ही मिलती है। इसमें संदेह नहीं है कि एक दिन भारत की महानायिकाओं में इसका नाम सम्मिलित होगा। अपनी प्रतिभा और योग्यता के बल पर यह सफलता

के शिखर को अवश्य चूमेगी।'' सरोजिनी कितनी प्रतिभाशाली थी, इसका पता इस बात से चलता है कि उसने अंग्रेजी का तीन वर्षीय पाठ्यक्रम मात्र एक वर्ष में पूरा कर डाला था।

प्रथम मैट्रिक छात्रा

मैट्रिक की परीक्षाएँ आरंभ हुईं। विद्यार्थी जी-जान से परीक्षाओं की तैयारियों में जुट गए। सरोजिनी भी देर रात तक पढ़ाई करती थी। उसके पिता मैट्रिक में उसे अच्छे नंबरों से उत्तीर्ण होते देखना चाहते हैं, यह बात वह अच्छी तरह से जानती थी। उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि वह उनकी इच्छा अवश्य पूरी करेगी।

कुछ दिनों बाद परिणाम घोषित हुआ, तो सभी की अपेक्षाओं पर खरी उतरते हुए सरोजिनी ने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके साथ ही बारह वर्षीय सरोजिनी मद्रास विश्वविद्यालय से मैट्रिक करने वाली प्रथम छात्रा बनी।

चारों ओर उनके नाम की धूम मच गई। अध्यापकों को अपनी इस शिष्या पर गर्व था। उसकी प्रशंसा करते हुए उनकी जिह्वा थकती नहीं थी। तत्कालीन अखबारों में यह बात बड़े-बड़े अक्षरों में प्रकाशित करते हुए उन्हें भारतीय नारी के उज्ज्वल भविष्य के रूप में चित्रित किया गया।

परंतु इतनी प्रशंसा पाकर भी सरोजिनी सामान्य रहीं। उन्हें प्रचार नापसंद था। इसके बारे में उन्होंने एक बार कहा था, ''सच कहूँ तो मुझे यह कभी अच्छा नहीं लगा। इस प्रकार की बातों ने मुझे कभी प्रभावित नहीं किया।''

□

4 'लव' और 'मेहर मुनीर'

'मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, उस ममत्व से,
जिसका रूप अपरिवर्तनीय है,
रात के सितारों की तरह।
मेरा प्रेम कहीं अधिक सशक्त है मृत्यु से,
मेरा प्रेम उषा की प्रभा जैसा निर्मल है।
मैं यह जानने को उत्सुक नहीं हूँ
कि तुम मुझसे प्रेम करते हो या नहीं।
मेरे लिए इतना ही काफी है
कि तुम हो श्रेष्ठतम, प्रियतम, सर्वोत्तम,
तुम्हें सौंपती हूँ अपने हृदय की निधियाँ।'

पहली दृष्टि में ये पंक्तियाँ किसी ऐसे कवि की रचना प्रतीत होती हैं, जिसकी लेखनी ने कागज रूपी तपोभूमि पर वर्षों कठोर साधना की हो, जिसका मन काव्य की गहराई में पूरी तरह से रम चुका हो, परंतु वास्तविकता यह है कि इसका रचयिता कोई उम्रदराज कवि नहीं, बल्कि पंद्रह वर्षीय एक किशोरी थी। वह किशोरी जिसे ईश्वर ने जीवन की सार्थकता के लिए भेजा था, जिसे एक-एक कर अपने गुणों को संसार के समक्ष प्रस्तुत करना था।

'लव' नामक इस कविता की रचना सरोजिनी ने वर्ष 1895 में की थी।

मात्र कुछ पंक्तियों द्वारा सरोजिनी ने अपने मन के भावों को बड़ी सरलता से कागज पर उतार दिया। इन्हें पढ़कर बड़े-से-बड़ा कवि भी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। यदि इसके पीछे छिपे मर्म में उतरा जाए, तो प्रेम में डूबी कवयित्री के मनोभावों को सहज ही समझा जा सकता है।

कविता में प्रेम की अभिव्यक्ति करते हुए कवयित्री कहती हैं, 'मैं तुमसे ममत्व की गहराई से प्रेम करती हूँ। जिस प्रकार आकाश में स्थित तारे अपरिवर्तनीय तथा स्थिर हैं, उसी प्रकार मेरे प्रेम में परिवर्तन की आशंका व्यर्थ है। मृत्यु टल सकती है, लेकिन मेरा प्रेम उससे भी अधिक अटल है। उष्ण होते हुए भी मेरा प्रेम सुबह की

किरणों की तरह निर्मल है। तुम मुझसे प्रेम करते हो अथवा नहीं—यह जानने में मेरी रुचि नहीं है। मैं केवल इतना जानती हूँ कि तुम श्रेष्ठ हो; सर्वोत्तम हो, मेरे प्रियतम हो। इसलिए मैं अपने मन के कोमल भाव तुम्हें समर्पित करती हूँ।'

'मेहर मुनीर' की रचना

बिस्तर पर बैठी सरोजिनी कुछ लिखने में व्यस्त थी। हाथ कभी ठहर जाते तो कभी तेजी से चलने लगते। चेहरे पर आते-जाते भाव मन में उमड़ने वाले विचारों का संक्षिप्त परिचय दे रहे थे।

''सरोज, क्या कर रही हो तुम?''

आवाज सुनकर सरोजिनी एकदम हड़बड़ा गई। लिखना बंद करके उसने जल्दी से डायरी एक ओर रख दी।

कमरे में प्रविष्ट होते पिता की आँखों से पुत्री का यह कार्य छिपा न रह सका। वे बिस्तर के कोने पर आकर बैठ गए और उसके सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए बोले, ''क्या कर रही हो, सरोज?''

''बस, ऐसे ही कुछ पंक्तियाँ लिख रही थी।'' सरोज ने सहज भाव से उत्तर दिया।

''अच्छा, लाओ हम भी देखें कि क्या लिखा है?'' अघोरनाथ लाड़ करते हुए बोले।

डायरी में उसने अपने मनोभावों को नाटक रूप में उतारा था। उसे पढ़कर पिताजी क्या कहेंगे, यह सोचकर डायरी को थोड़ा पीछे सरकाते हुए सरोजिनी बोली, ''पिताजी, अभी थोड़ा लिखना बाकी है। उसे पूरा कर लूँ, फिर आप पढ़ लेना।''

उसके संकोच को अघोरनाथ पहचान गए। वे हँसते हुए बोले, ''यदि तुम इसे अभी नहीं पढ़वाना चाहती, तो कोई बात नहीं है, लेकिन मैं पिता-रूप में नहीं, बल्कि आलोचक और पाठक की दृष्टि से इसे पढ़ना चाहता था। यदि पंक्तियाँ मन की गहराई से लिखी गई हैं, तो तुम्हें इन्हें पढ़वाने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए, क्योंकि भावयुक्त लेखन निश्चय ही पढ़ने वाले के हृदय को स्पर्श करता है।''

विश्वास और स्नेह का सहारा पाकर सरोजिनी का संकोच जाता रहा। उसने डायरी आगे बढ़ा दी।

वह फारसी भाषा में लिखा एक नाटक था, जिसका नाम था, 'मेहर मुनीर'। विचारमग्न मुद्रा में बैठे अघोरनाथ एक-एक पन्ने को ध्यानपूर्वक पढ़ रहे थे। लगभग

पंद्रह मिनट तक डायरी का अवलोकन करने के बाद उन्होंने नजरें उठाकर सरोजिनी की ओर देखा।

''सरोज¨'' वे बोले।

स्वर की गंभीरता से सरोजिनी का हृदय धड़क उठा। 'उसके अटपटे लेखन से पिताजी अवश्य नाराज होंगे, रह-रहकर यही विचार उसके मन में आने लगा। आलोचना सुनने के लिए उसने स्वयं को तैयार कर लिया।

''जब तुम माँ के गर्भ में थीं, उस समय वह अकसर कुछ-न-कुछ लिखा करती थी। उसका लेखन इतना सशक्त और प्रभावशाली था कि उसे पढ़कर कई बार मैं भी अचंभित रह जाता था। मैं हमेशा उससे कहा करता था कि तुम्हारे इस गुण का प्रभाव जन्म लेने वाली संतान पर अवश्य पड़ेगा। मेरी बात को वह हँसी में टाल जाती थी, परंतु आज लगता है, जैसे उस समय माँ सरस्वती मेरी जिह्वा पर बैठकर वह बात दोहराती थी। सरोज, तुम्हारे लेखन से मुझे वही अनुभूति हो रही है, जो किसी महान् साहित्यकार की पुस्तक पढ़ने पर होती है। तुमने शब्दों का चयन और प्रयोग इतनी सुंदरता के साथ किया है, मानो माँ सरस्वती ने तुम्हें अपने समस्त गुण अर्पित कर दिए हों। मुझे तुम में भविष्य की महान् दार्शनिक, लेखिका एवं कवयित्री नजर आती है। तुम्हारा यह गुण फलित होकर जनसाधारण की आवाज बनेगा।''

इतना कहकर वह डायरी एक ओर रखकर वे वहाँ से चले गए।

सरोजिनी अचंभित-सी थी। उसने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि उसे वैज्ञानिक अथवा गणितज्ञ बनाने की इच्छा रखने वाले पिता उसके लेखन को इतना प्रोत्साहित करेंगे। प्रेमवश उसकी आँखों में आँसू उमड़ आए।

छात्रवृत्ति और विदेश-गमन

नाटक को प्रकाशित करवाने के लिए अघोरनाथ ने उसे एक स्थानीय पत्रिका में भेजा। प्रकाशित होते ही विभिन्न स्थानों से सकारात्मक प्रतिक्रियाओं का ताँता-सा लग गया। पाठक-गण पत्र लिख-लिखकर लेखिका के आगामी नाटक के बारे में पूछने लगे। उन्हें उम्मीद थी कि पत्रिका के अगले अंक में ऐसा ही मर्मस्पर्शी नाटक अवश्य प्रकाशित होगा।

अघोरनाथ ने नाटक के अंग्रेजी संस्करण की कुछ प्रतियाँ हैदराबाद के निजाम तथा अपने घनिष्ठ मित्रों को भी भेजीं। कला-प्रेमी निजाम को नाटक अत्यंत रोमांचित कर गया। सरोजिनी की लेखनी का जादू देखकर वे विस्मित थे। जिस दिन

उन्होंने नाटक पढ़कर समाप्त किया, उसी दिन अघोरनाथ से कहा, ''सरोजिनी की प्रशंसा शब्दों में करना मेरे लिए असंभव है। उसके काव्य-कौशल और प्रतिभा ने मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया है। ऐसी होनहार तरुणी को प्रोत्साहित करने के लिए मैं उसे ऐसा उपहार देना चाहता हूँ, जो उसके भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो।''

उन्होंने सरोजिनी के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था कर दी, जिससे वह इंग्लैंड जाकर शिक्षा अर्जित कर सके। इसमें इंग्लैंड आने-जाने के खर्च के साथ-साथ प्रतिवर्ष 300 पौंड की भारी-भरकम राशि भी सम्मिलित थी।

लेकिन सरोजिनी इसके लिए तैयार नहीं थी। माता-पिता तथा भाई-बहनों को छोड़कर इंग्लैंड जाना उसे अखर रहा था। इसलिए उसने पिता से कहा, ''यह जरूरी तो नहीं है कि मैं विदेश जाकर अध्ययन करूँ। यहाँ रहकर भी मैं अपनी पढ़ाई पूरी कर सकती हूँ। वहाँ आप लोगों के बिना मैं कैसे रहूँगी?''

अघोरनाथ ने उसे समझाते हुए कहा, ''तुम्हारी बात सही है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे दृष्टिकोण तथा विचारों का विस्तार हो। तुम सिर्फ भारतीय संस्कृति तक सीमित न रहकर पाश्चात्य् संस्कृति का भी निकटतम और गहन अवलोकन करो। इसके लिए इंग्लैंड जाना जरूरी है। हो सकता है कि अभी तुम्हें ऐसा करना पसंद न हो, लेकिन मुझे विश्वास है कि भविष्य में यह तुम्हारे जीवन को एक महत्त्वपूर्ण दिशा देगा।''

पिता द्वारा समझाने पर अंततः सरोजिनी इंग्लैंड जाने के लिए सहमत हो गई। ❑

5

महान् विचारकों से मार्गदर्शन

सन् 1895 में होमरूल की संस्थापक श्रीमती एनी बेसेंट के साथ सरोजिनी ने इंग्लैंड की यात्रा की। महीनों चलने वाली इस समुद्री यात्रा के दौरान उन्हें एनी बेसेंट का भरपूर स्नेह प्राप्त हुआ। उनके सान्निध्य से उनमें नए-नए विचारों का उदय हुआ, जिससे उनके दृष्टिकोण को व्यापक विस्तार मिला।

सोलह वर्षीय सरोजिनी कैब्रिज यूनिवर्सिटी से पढ़ाई करना चाहती थीं, परंतु उसमें दाखिला लेने के लिए उनकी आयु बहुत कम थी। अत: काफी सोच-विचार करने के बाद उन्होंने लंदन के किंग्स कॉलेज में दाखिला ले लिया।

ऑर्थर से मित्रता

इंग्लैंड में भारतीय विद्यार्थियों के रहने तथा पढ़ने की व्यवस्था कुमारी मेनिंग ने सँभाली हुई थी। भारतीय संस्कृति से उन्हें गहरा लगाव था, इसलिए पूरे समर्पण भाव से वे इस कार्य में जुटी हुई थीं। सरोजिनी के रहने की व्यवस्था भी उन्हीं के पास की गई थी। सामाजिक स्तर पर कार्यरत कुमारी मेनिंग की अनेक साहित्यकारों, विचारकों, दार्शनिकों एवं कवियों से मित्रता थी। यदा-कदा वे उनके घर बैठकें किया करते थे, जिसमें सामाजिक विषयों पर विचार-विमर्श के साथ-साथ साहित्य एवं कविताओं की समालोचना की जाती थी, संगीत का आनंद लिया जाता था। इन्हीं बैठकों के दौरान सरोजिनी की भेंट ऑर्थर साइमंस से हुई।

वेल्स में जन्मे ऑर्थर साइमंस एक महान् विचारक एवं अंग्रेजी साहित्य के समालोचक थे। उनका अधिकांश समय फ्रांस और इटली में व्यतीत होता था। उन्होंने न सिर्फ प्रसिद्ध पुस्तकों का संपादन किया, बल्कि कविताओं की रचना भी की थी।

सरोजिनी ने उन्हें अपनी कुछ कविताएँ दीं। उनका अवलोकन करने के बाद वे सरोजिनी के लेखन से अत्यंत प्रभावित हुए। उनमें उन्हें भविष्य की कवयित्री दिखाई दे रही थी। उन्होंने सरोजिनी के साथ लेखन-संबंधी महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार-विमर्श किया। शीघ्र ही यह भेंट गहरी मित्रता में परिवर्तित हो गई।

कुछ वर्षों बाद जब सरोजिनी का प्रथम काव्य-संग्रह 'द गोल्डन थ्रैशोल्ड' (स्वर्णिम देहरी) के नाम से प्रकाशित हुआ, तब पुस्तक की भूमिका में साइमंस ने लिखा था :

'जो लोग इंग्लैंड में सरोजिनी से परिचित थे, वे जानते हैं कि इस लघुकाया का समूचा जीवन उनकी आँखों में केंद्रित हो गया था। वे आँखें सौंदर्य की ओर उसी सहजता से मुड़ जाती थीं, जिस प्रकार सूरजमुखी का फूल सूरज की ओर। तब वे आँखें ऐसे खुलती चली जाती थीं कि केवल आँखें-ही-आँखें दिखाई देती थीं।

वे हमेशा सिल्क की साड़ी में लिपटी रहती थीं। वे कद से छोटी तो थीं ही, उनके लंबे काले बाल उनकी पीठ पर नीचे तक खुले लटके रहते थे। इसके कारण उन्हें देखकर किसी बच्ची के होने का भ्रम होता था। वे बहुत कम बोलती थीं और जब बोलती थीं, तो मधुर संगीत जैसे मंद स्वर में। वे जहाँ भी होतीं, सदैव एकाकी लगती थीं।'

साइमंस आगे लिखते हैं :

उनमें कुछ ऐसा था–जिसे शायद ही व्यक्तिगत कहा जा सके। मैं उसे उनकी उत्कट चेतना या प्रज्ञा कहूँगा। मैंने इसे महसूस किया, मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने इसे सराहा। वे ऐसी प्रज्ञा थी, जिसका उदय ईसाई चेतना की अपेक्षा एक प्राचीनतम चैतन्य से हुआ था, जिसके सामने संकीर्णता, क्षुद्रता और अशाश्वतता जैसी मन:स्थितियाँ भस्म हो जाती हैं।

'उनका शरीर न तो पीड़ा से मुक्त रहा और न ही हृदय संघर्ष से विहीन, किंतु फिर भी न तो काया की निर्बलता और न ही हृदय की व्यथा योग में लीन महात्मा बुद्ध की ध्यानावस्था सरीखी उनकी एकाग्रता को भंग कर सकी।'

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि सरोजिनी के असाधारण व्यक्तित्व एवं लेखन ने साइमंस को कितनी गहराई से प्रभावित किया था।

एक बार सरोजिनी ने साइमंस को लिखा था, 'मैं पक्षियों की तरह गाती हूँ और मेरे गीत अल्पजीवी की तरह हैं।'

इस पर साइमंस ने टिप्पणी की थी–'इसका पक्षियों के समान होना गीत की विशेषता है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। यही इसे महत्त्वपूर्ण बनाता है। यह संकेत है दुर्लभ प्रवृत्ति का, प्रवृत्ति जो पूर्व की उस महिला की है, जो पाश्चात्य भाषा द्वारा भाव ढूँढ़ रही है तथा कुछ हद तक पाश्चात्य प्रभाव के अंतर्गत। वह संपूर्ण प्रवृत्ति को व्यक्त नहीं कर सकती, लेकिन वह व्यक्त कर रही है। मेरे विचार में यह सार है, उनमें पूर्व का जादू है।'

किंग्स कॉलेज में पढ़ाई पूरी करने के बाद सरोजिनी ने गर्टन कॉलेज में दाखिला लिया।

एडमंड गॉस से भेंट

सरोजिनी का व्यक्तित्व इतना आकर्षक और सम्मोहित कर देने वाला था कि लोग सहज ही उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे। वे जहाँ भी गईं, उनके मित्रों की संख्या में वृद्धि हुई। वे अकसर उनकी कविताओं का आनंद लिया करते थे। ऐसे ही उनकी कविताओं को सुनकर एक बार एक मित्र ने परामर्श दिया, ''तुम इतना अच्छा लिखती हो, अपनी कविताएँ एडमंड गॉस को क्यों नहीं दिखातीं? वे इनकी समीक्षा अवश्य करेंगे।''

21 सितंबर, 1849 को जन्मे एडमंड गॉस महान् कवि और लेखक होने के साथ-साथ श्रेष्ठ समालोचक भी थे। उन्होंने जीवन का प्रारंभ ब्रिटिश म्यूजिम के पुस्तकालय में सहायक के रूप में किया। सन् 1875 से 1904 तक 'बोर्ड ऑफ ट्रेड' में अनुवादक के पद पर कार्य करने के बाद वे 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स लाइब्रेरी' में मुख्य अध्यक्ष के पद पर नियुक्त हुए। वर्ष 1873 में उनकी कविताओं का संग्रह पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुआ था–इसके साथ ही उनकी गिनती तत्कालीन प्रसिद्ध कवियों में होने लगी।

एडमंड गॉस के नाम से सरोजिनी अपरिचित नहीं थीं। भारत में रहते हुए ही उन्होंने गॉस द्वारा लिखित अनेक कविताओं एवं पुस्तकों का अध्ययन कर डाला था। यद्यपि उनके मन में उनसे मिलने की तीव्र इच्छा थी, लेकिन अभी तक उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। इसलिए मित्र की बात सुनकर वे आश्चर्यमिश्रित स्वर में बोलीं, ''इतने बड़े कवि मुझ जैसी एक साधारण-सी लड़की की कविताओं का विश्लेषण क्यों करने लगे? फिर वे मुझे जानते भी नहीं हैं। भला उनसे मिलना कैसे संभव हो सकता है?''

''चिंता मत करो, मैं उन्हें अच्छी तरह से जानती हूँ। नए उभरते कवियों का मार्गदर्शन करना उन्हें बहुत पसंद है। मैं उनसे तुम्हारा परिचय करवाऊँगी।''

आश्वासन पाकर सरोजिनी के होंठों पर मुसकराहट थिरक गई।

कुछ ही दिनों बाद एडमंड गॉस के सामने बैठी सरोजिनी मन-ही-मन स्वयं को धन्य मान रही थीं। आज उन्हें अपने मनपसंद कवि से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। औपचारिक बातचीत के बाद गॉस ने प्रश्न किया, ''आप लिखती हैं?''

''जी।'' सरोजिनी ने धीरे से उत्तर दिया।

''क्या लिखती हैं, कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक या कुछ और?'' गॉस ने अगला प्रश्न किया।

सरोजिनी ने थोड़ा हड़बड़ाकर कहा, ''थोड़ी-बहुत कविता लिख लेती हूँ।''

''क्या आप अपनी लिखी हुई कुछ कविताएँ दिखा सकती हैं?''

काँपते हाथों से सरोजिनी ने एक डायरी आगे कर दी।

वे बड़ी गंभीरता के साथ एक-एक कर पन्ने पलटने लगे। थोड़ी देर के बाद उन्होंने चुप्पी तोड़ी, ''इसे मेरे पास छोड़ जाइए। अपनी टिप्पणी संलग्न करके मैं इसे कल तक आपको भिजवा दूँगा।''

गॉस का गुरुमंत्र

'उनमें रचना-कौशल, व्याकरण की दृष्टि से शुद्धता और भावनात्मक सुरुचि है, लेकिन वैयक्तिकता से वे बिलकुल शून्य हैं। अनुभूति और बिंबों की दृष्टि से वे पाश्चात्य हैं तथा टेनीसन एवं शेली की रचनाओं की प्रतिध्वनियों पर आधारित हैं। यद्यपि मैं दावे से नहीं कह सकता, लेकिन मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उनमें ईसाई पलायनवाद का भी पुट है।

यदि स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो अंग्रेजी शैली में उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसे रद्दी में फेंककर अपने देश की वास्तविकता के आधार पर नए सिरे से सृजन का शुभारंभ करना चाहिए।'

ये पंक्तियाँ उस टिप्पणी का एक भाग है, जो एडमंड गॉस ने कविताएँ पढ़ने के बाद की थी। टिप्पणी के स्थान पर इसे 'गॉस का गुरुमंत्र' कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि वे उनकी प्रतिभा को स्वतंत्र रूप से विकसित करना चाहते थे। उनके लेखन में किसी अन्य विचारक का प्रभाव न हो, इसलिए उन्होंने उन्हें सृजन का नया मार्ग सुझाया।

इस मार्गदर्शन ने सरोजिनी के काव्य-सृजन को नया रंग-रूप दिया। वे निराश नहीं थीं, बल्कि बताए गए दिशा-निर्देशों का गंभीरतापूर्वक पालन करने के लिए दृढ़-संकल्प थीं।

सरोजिनी की स्वीकारोक्ति

एडमंड गॉस के परामर्श को सरोजिनी ने मुक्त हृदय से स्वीकारा था, इसका अनुमान उस पत्र से लगाया जा सकता है। जो उन्होंने गॉस को सन् 1896 में लिखा था। इस पत्र के अनुसार—

''आपने मुझसे जो कुछ कहा, उसके लिए मैं धन्यवाद देने का साहस नहीं जुटा पा रही हूँ। आप यह नहीं जान सकते कि उन शब्दों का मेरे लिए कितना महत्त्व है। लोग मेरे जीवन में किस प्रकार रंग भर देते हैं और मेरी उस गहरी आत्मग्लानि और हताशा में, जिसमें मैं प्रायः जीती हूँ, किस तरह नई आशा तथा साहस भर देते हैं, इसे आप नहीं जान पाएँगे।

''कविता ही वह चीज है, जिससे मैं ऐसी उत्कटता, सघनता और पूर्णता के साथ प्रेम करती हूँ। मैं कवयित्री हूँ, इस मंत्र का मैं मन-ही-मन जाप करती हूँ, जिससे कि इसे सिद्ध कर सकूँ। क्या आप मुझे अनुमति देंगे कि मैं आपको अपने बारे में कुछ बताऊँ? मैं आपको यह बताना चाहती हूँ कि मेरी ग्यारह वर्ष की अवस्था में आप किस प्रकार मेरे जीवन को प्रभावित करते रहे हैं।

''मैं सुंदर, स्वप्निल और असामान्य परिस्थितियों में पलकर बड़ी हुई हूँ, लेकिन उन परिस्थितियों में ऐसा कुछ नहीं था, जो मुझे प्रत्यक्षतः काव्य की दिशा में प्रोत्साहन देता। वास्तविकता तो यह है कि मेरे ऊपर पड़ने वाले सबसे अधिक सशक्त प्रभाव विज्ञान और गणित के थे। मैंने हमेशा कविता से प्रेम किया, परंतु मैं यह सोच भी नहीं सकती थी कि मैं स्वयं कविता लिख सकती हूँ। मैंने अपने इस नए दुस्साहस के बारे में किसी को कुछ नहीं बताया, लेकिन मैं लिखती चली गई।

''मेरे मन में कल्पनाएँ बहुत सहजता और तीव्रता से अवतरित होती चली गईं, हालाँकि इसमें कोई संदेह नहीं कि वे बचकानी और कमजोर थीं। मेरे पास उनका कोई प्रमाण शेष नहीं है, जिसके आधार पर मैं उनकी कहानी कह पाती। न जाने कैसे वे मेरे पिता के हाथों पड़ गईं और शीघ्र ही यह बात सबको मालूम हो गई, फिर तो मुझे अद्‌भुत माना जाने लगा और मैं जो कुछ भी करती, उसे अनोखा और दिव्य मान लिया जाता। मुझे उन दिनों अकारण ही अत्यंत स्नेहपूर्वक, लेकिन विवेकहीन प्रशंसा और अनुशंसा मिली। उससे मेरे भीतर दंभ पैदा ही होने वाला था कि न जाने कैसे और क्यों, एडमंड गॉस के नाम का जादू-भरा प्रभाव मुझ पर पड़ने लगा।

''उस जमाने में मेरे लिए वास्तविकताओं की अपेक्षा जादुई मिथक अधिक

सत्य सिद्ध हुआ करते थे। अत: मेरे मन में से एक धुँधली और अस्फुट-सी चेतना उदय होने लगी कि चाहे जैसे भी हो, यह जादुई नाम मेरे जीवन पर सबसे अधिक सशक्त और अपरिहार्य प्रभाव सिद्ध होगा।

''मैं लिखती चली गई और हैदराबाद मेरी रचनाओं के बारे में अधिकाधिक पागल होता चला गया। मेरे विचार में वस्तुत: सारे भारत में ही मुझे मान्यता दी जाने लगी, लेकिन जैसे-जैसे मेरी प्रशंसा में वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे मैं स्वयं से ऊबती गई और मेरे मन में उत्कट कामना जाग उठी कि कोई मेरी कविताओं की सही रीति से आलोचना कर पाता। मुझे मालूम है कि मेरी कविताएँ बहुत कमजोर होती थीं, लेकिन मैं तो यह जानना चाहती थी कि उनमें आगे के लिए श्रेष्ठतर रचनाओं की संभावनाएँ निहित हैं या नहीं।

''अंतत: निराश होकर मैंने आपको एक पत्र लिखा। मैं सोचती हूँ कि वह पत्र कितना बचकाना रहा होगा। यह तब की बात है, जब मैं लगभग चौदह-पंद्रह वर्ष की थी, लेकिन अगले दिन मैंने वह पत्र जला डाला। उसके बाद मैं एक लंबी और भयंकर बीमारी से पीड़ित रही, जिसने मुझे मृतप्राय: कर दिया। मुझे ऐसा लगता है कि कुछ समय के लिए उसने मेरी मानसिक क्षमताओं को आंशिक रूप से निर्जीव कर डाला था।

''ऐसा लगता था कि काव्य-प्रेम और श्रेष्ठतर रचना की कामना के अतिरिक्त और सबकुछ मेरे जीवन से समाप्त हो गया है। उसके बाद मैं इंग्लैंड आई, तब मैं सोलह वर्ष की थी। सोलह वर्ष की अवस्था की दृष्टि से मैं अपने आपको बहुत ही अज्ञानी मानती हूँ, क्योंकि मेरे लिए इंग्लैंड का अर्थ था, शेली और कीट्स, जिनकी मृत्यु हो चुकी थी और एडमंड गॉस, जो जीवित हैं तथा मेरी कल्पना के इंग्लैंड का एक बहुत बड़ा अंश हैं। शेष में मैं सिर्फ वेस्टमिंस्टर रब्बे और टेम्स को जानती थी।

''ऐसी स्थिति में मैंने निश्चय किया कि मुझे एडमंड गॉस से मिलना चाहिए। पहले छह महीने के भीतर तो मैं एक पंक्ति भी न लिख पाई, न ही कुछ और कर सकी। उसके बाद जैसे अचानक स्रोत फूट पड़े और मैं लिखती गई... लिखती गई... लिखती गई।

''मेरा विचार है कि तीन महीने में मैंने पैंतालीस कविताएँ लिख डालीं, लेकिन मुझे ऐसा लगा कि ये कविताएँ मेरी पहले की कविताओं से कमजोर हैं। मैंने आपके पास कविताओं की जो पहली नत्थी भेजी थी, उसमें कमजोर कविता के असाधारण विस्फोट में से छाँटी गई कविताएँ थीं, फिर जनवरी में मैंने आपके दर्शन किए और कल्पना ने मेरे लिए आकार ग्रहण कर लिया।

''मैं निराश नहीं हुई थी। वस्तुत: मैं उस दिन को कभी नहीं भुला पाऊँगी, क्योंकि एक ही झटके में उस नए महान् जीवन में मेरी चेतना मुखर हो उठी, जिसकी मैंने हमेशा कामना की थी, जिसके पीछे इतना लंबा समय गँवाया था।

''उस दिन से मुझे महसूस होने लगा कि मैं बदल गई हूँ। मुझे ऐसा लगा कि बचकानी बातें छोड़कर मैंने नई एवं सुंदर आशाओं तथा आकांक्षाओं का परिधान पहन लिया है। मैं विकसित होती चली गई विकसित होती चली गई। मैं उसे महसूस कर रही हूँ। मैं पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्टता से देख पा रही हूँ, अधिक तीव्रता से अनुभव कर रही हूँ, अधिक गहराई से सोच पा रही हूँ और कला की उस सुंदर आत्मा पर अधिक उत्कटता और अधिक निस्वार्थ भाव से प्रेम कर रही हूँ, जो अब मुझे मेरे जीवन और रक्त की अपेक्षा अधिक प्रिय हो गई है। इस सबके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।

''मैं जानती हूँ कि मैं अपनी भावनाओं को तनिक भी ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाई हूँ, लेकिन मुझे विश्वास है कि आप मुझे समझ लेंगे और मेरी इस अभिव्यक्ति को अन्यथा नहीं लेंगे।

''मेरी इच्छा है कि जिस प्रकार इतने लंबे समय से आप मेरे जीवन पर इतना श्रेष्ठ प्रभाव डालते रहे हैं, उसी प्रकार आप हमेशा मुझे प्रभावित करते रहेंगे। मैं जो कुछ भी लिखूँगी, वह सब आपको भेज दूँगी और आप मुझे यह बताएँगे कि आप उसके बारे में क्या सोचते हैं।

''मेरी इच्छा है कि जैसे-जैसे मेरी रचनाएँ सुधरती जाएँ, आप पहले की अपेक्षा अधिक कठोर और निर्मम होते जाएँ, क्योंकि मैं सिर्फ चंद वर्षों तक नहीं, शताब्दियों तक साहित्य के क्षेत्र में बनी रहना चाहती हूँ। यह मेरा दंभ मात्र हो सकता है, लेकिन पर्वत-शिखर से परे न जा सकने के बावजूद सितारों पर निगाह रखना क्या अच्छा नहीं होता?

''आपका इतना अधिक समय लेने के लिए मैं आपसे क्षमा माँगने वाली नहीं हूँ, क्योंकि आपको बताए बिना ही कि आपके प्रति कृतज्ञ होने के मेरे पास कितने कारण हैं, मैं हमेशा खामोशी के साथ कृतज्ञ नहीं रह सकती। मुझ पर सदैव विश्वास रखिएगा।''

यदि दोनों विचारकों ऑर्थर साइमंस और एडमंड गॉस के दृष्टिकोण की बात की जाए, तो उन दोनों ने ही सरोजिनी के काव्यात्मक पक्ष को महत्त्वपूर्ण आयाम दिया। साइमंस ने जहाँ उनकी प्रतिभा को परखकर उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया, वहीं गॉस ने वास्तविकता का मंच प्रदान कर उनकी उन्नति का मार्ग

प्रशस्त किया। यह बिलकुल वैसा ही था, जैसे एक व्यक्ति द्वारा पौधे का पोषण करना और दूसरे द्वारा कटाई-छँटाई कर उसे आकार देना।

स्वदेश-वापसी

सरोजिनी पूरी लगन के साथ शिक्षा ग्रहण कर रही थीं, परंतु इस बीच उनका स्वास्थ्य खराब रहने लगा। पढ़ाई का अत्यधिक बोझ, लेखन के प्रति गहरा रुझान और परिवार से दूरी—उनकी अस्वस्थता के प्रमुख कारण थे। अत: स्वास्थ्य-लाभ के लिए वे इटली चली गईं। प्राकृतिक सौंदर्य और अद्‌भुत कलात्मकता से युक्त इटली ने सरोजिनी को अत्यंत प्रभावित किया। वहाँ के खूबसूरत दृश्यों एवं वातावरण में वे पूरी तरह से रंग गईं। इससे वे न केवल शारीरिक रूप से, बल्कि आत्मिक और मानसिक रूप से भी सुदृढ़ हुईं।

अस्वस्थता के कारण सरोजिनी की पढ़ाई में पहले ही व्यवधान आ चुका था। अब शिक्षा को सुचारू रूप से गतिमान बनाए रखने की न तो उनमें शक्ति थी और न ही इच्छा। अत: काफी सोच-विचार के बाद सन् 1898 में वे भारत लौट आईं। यद्यपि उनके पास डिप्लोमा या डिग्री नही थीं, लेकिन वे अपने साथ महान् विचारकों के सान्निध्य और मार्गदर्शन का लाभ लेकर आई थीं, जिसने भविष्य में उनके काव्य एवं दर्शन को नई दिशा दी।

भारतीय संस्कृति से प्रेम

पाश्चात्य रंग में डूबा इंग्लैंड उन दिनों भौतिकतावाद और फैशन का गढ़ माना जाता था। भारत के प्राचीन सांस्कृतिक वातावरण से आए अनेक भारतीय विद्यार्थियों को यहाँ की उन्मुक्तता और खुलेपन ने बहुत आकर्षित किया। यहाँ के रीति-रिवाज और परंपराएँ उनके लिए नए थे। उनमें भारतीय परंपराओं की तरह रूढ़िवादिता या बंधनों का भय नहीं था। यही कारण है कि यहाँ आकर वे इसकी चमक-दमक में खो गए और स्वयं को पूरी

तरह से पाश्चात्य रंग में ढाल लिया। उनका पहनावा, बोलचाल, व्यवहार सब पश्चिमी सभ्यता की भेंट चढ़ गया। भारतीय की अपेक्षा स्वयं को 'विलायती बाबू' अथवा 'साहब' कहलवाना उन्हें अधिक सम्मानजनक लगता था। अपनी सभ्यता और संस्कृति उन्हें 'दकियानूसी' लगने लगी थी, लेकिन सरोजिनी इन सबसे बिलकुल अलग थीं।

सरोजिनी ने लगभग तीन वर्ष तक इंग्लैंड में रहते हुए वहाँ की संस्कृति को निकट से देखा। उनके मित्रों में अनेक ऐसे भारतीय भी थे, जो पाश्चात्य सभ्यता के अनुयायी थे, परंतु सरोजिनी ने न तो पश्चिमी रंग को स्वयं पर चढ़ने दिया और न ही उसे पूरी तरह से बहिष्कृत किया। अन्य लोगों की अपेक्षा उन्होंने बीच का मार्ग चुना और उसके उपयोगी पहलुओं को अंगीकार कर लिया।

एक बार किसी ने सरोजिनी से प्रश्न किया था, ''इंग्लैंड में रहने के बाद भी पश्चिमी सभ्यता आपको प्रभावित क्यों नहीं कर सकी?''

''यह कहना गलत है कि पश्चिमी सभ्यता ने मुझे प्रभावित नहीं किया। हाँ, बाहरी रूप की अपेक्षा मैंने उसके उदारवाद, आदर्शवाद और समाज-सुधारक विचारों को स्वीकारा। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे लेखन में देखा जा सकता है। मुझे भारतीय संस्कृति से प्रेम है, इसलिए इसमें व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए मैं किसी भी सभ्यता के महान् विचारों को स्वीकार कर सकती हूँ। इसके लिए मुझे बाहरी वेशभूषा या व्यवहार बदलने की आवश्यकता नहीं है।'' सरोजिनी ने बड़ी सहजता से उत्तर दिया था।

□

प्रेम का परिणय-सूत्र

6

''प्रेम न तो दिखाई देता है और न ही इसे नापने का कोई मापदंड है। यह ऐसी कोमल अनुभूति है, जिसे सिर्फ हृदय से महसूस किया जाता है। प्रेम जितना सरल और निर्मल है, उसकी व्याख्या उतनी ही जटिल है। यदि दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाए, तो प्रेम आनंदित कर देने वाला वह भाव है, जिसके अहसास से मनुष्य का अंतर्मन पुलकित हो उठता है, सृष्टि की तुच्छ-से-तुच्छ वस्तु के प्रति भी उसमें स्नेह और सौंदर्य उत्पन्न हो जाता है।''

प्रेम की परिकल्पना आज की नहीं है, वरन् यह सदियों से प्रकृति का महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। पौराणिक ग्रंथों के अनुसार, सृष्टि के प्रारंभ में मनुष्य में विभिन्न भावों के साथ-साथ प्रेम की भी उत्पत्ति हुई। इसे सभी भावों में श्रेष्ठ कहा गया, क्योंकि इसमें स्वार्थ का लेशमात्र भी अंश नहीं था। माँ-बेटा, पिता-पुत्री, भाई-बहन, पति-पत्नी या फिर किसी और संबंध में लोगों को परस्पर बाँधने का कार्य प्रेमरूपी अदृश्य शक्ति करती है। सामान्यत: देखा गया है कि जिस रिश्ते में प्रेम नष्ट हो जाता है, वह रिश्ता भी शीघ्र समाप्त हो जाता है। इसलिए प्रेम को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

प्रेम का चाहे कोई भी रूप हो, सांसारिक प्राणी इसके प्रभाव से स्वयं को अलग नहीं रख सकते। आपसी संबंधों में प्रेम मौजूद होता ही है, परंतु कभी किसी अनजाने के लिए इसका पनप उठना इसे एक नया रूप दे देता है।

अधिकतर यह स्थिति उन दिनों अधिक प्रबल होती है, जब किशोर अथवा किशोरी बचपन का साथ छोड़कर यौवन की दहलीज पर कदम रखने के लिए तैयार होते हैं। यह वह समय होता है, जब शारीरिक परिवर्तनों के साथ-साथ एक-दूसरे के प्रति कोमल भावों का जन्म होता है।

विद्वानों के मतानुसार, उम्र की इस अवस्था में लगभग हर व्यक्ति इन कोमल भावनाओं से दो-चार अवश्य होता है और इसका प्रभाव जीवनपर्यंत उसके मन पर रहता है। कई बार प्रेम का प्रभाव इतना गहरा होता है कि वह मनुष्य को पुराने ढर्रे से खींचकर एक नए युग की ओर मोड़ देता है। वह उसे जिंदगी का एक उद्देश्य देता है, जिसे पाने के प्रयास में कई बार वह इतना ऊँचा उठ जाता है कि दुनिया उसके सामने नतमस्तक हो जाती है।

ऐसा ही कुछ सरोजिनी के साथ भी हुआ।

प्रेम की अनुभूति

''भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय और शोचनीय है। इसका कारण वे पुरुष हैं, जो अहंकार के वशीभूत होकर उन्हें आगे नहीं बढ़ने देते। उनके विचार में शिक्षा प्राप्त करके नारी अधिक स्वतंत्र हो जाएगी। ऐसी स्थिति में उनका घर कौन सँभालेगा? असहाय और कोमल नारी जब शक्तिसंपन्न एवं सुदृढ़ होकर उनके सामने खड़ी होगी तो वे कैसे उसका मानसिक अथवा शारीरिक शोषण करेंगे। यह सोच केवल अशिक्षित या निम्नवर्गीय लोगों की नहीं है, वरन् कई शिक्षित तथा उच्चवर्गीय लोग भी ऐसी सोच रखते हैं। ज्ञानवान होते हुए भी वे नहीं समझते कि नारी का शिक्षित होना तथा उनके साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना समाज और परिवार की उन्नति का परिचायक है। इससे न केवल समाज से रूढ़िवादिता का अंत होगा, बल्कि एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण होगा जिसमें सभी अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक होंगे¨।'

डॉ. अघोरनाथ के घर में बैठक आयोजित की गई थी, जिसमें हैदराबाद के कुछ विचारक, प्रोफेसर तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति सम्मिलित थे। वार्तालाप के दौरान नारी-शिक्षा का विषय छिड़ गया, जिसके संदर्भ में उपस्थित विचारक अपने-अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। उपरोक्त विचार गोविंदराजुलु नायडू नामक एक युवक के थे। कुछ दिन पूर्व ही वे एडिनबरा यूनिवर्सिटी से चिकित्सा-शास्त्र में 'डॉक्टरेट' करके लौटे थे। उनकी योग्यता से प्रभावित होकर हैदराबाद के निजाम ने उन्हें शाही सेना के चिकित्सा-विभाग का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया था। अघोरनाथ उनसे भली-भाँति परिचित थे। उनके सुधारवादी विचारों ने उन्हें मोह लिया था। इसलिए बैठक में उन्हें विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था।

''यह भारत देश की विडंबना है कि यहाँ नारी को सदैव दासी तुल्य समझा गया, उसे भोग-विलास की वस्तु मानकर घर की सीमाओं में बाँधा गया। ऐसा करके राष्ट्र की आधी शक्ति हमने स्वयं ही नष्ट कर दी। इसके विपरीत पश्चिमी देशों में नारी की शक्ति को पहचानकर उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया गया। उसी का परिणाम है कि आज वे हमसे कोसों आगे हैं। यद्यपि भारतीय सभ्यता विश्व की सबसे प्राचीनतम सभ्यता है। विश्व के लिए यह ज्ञान का स्रोत रही है, इसमें भी संदेह नहीं है, लेकिन उसका सबसे अधिक लाभ दूसरी सभ्यताओं को हुआ, जबकि हम जनक होकर भी इससे वंचित रह गए। हमने विश्व का मार्गदर्शन तो कर दिया, लेकिन अपनी संस्कृति में व्याप्त रूढ़िवादिता और पुराने सड़े-गले रीति-रिवाजों व परंपराओं को हम मरे हुए साँप की भाँति गले में लपेटे रहे। यदि हम भारत की उन्नति

और सुदृढ़ता चाहते हैं, तो हमें प्रगतिशील विचारधारा को अपनाकर नारी-शक्ति को आगे आने के लिए प्रेरित करना होगा, मन की कमजोरियों और रूढ़िवादिता को समाप्त करके परिवर्तन को अपनाना होगा। वस्तुत: नारी-शक्ति ही एक सशक्त राष्ट्र की मजबूत नींव सिद्ध होगी।''

गोविंदराजुलु की बात समाप्त होते ही पूरा कक्ष तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। उनके विचारों ने उपस्थित लोगों को प्रभावित किया था। विदेश से लौटे नवयुवक के इन प्रगतिशील और महान् विचारों को सुनकर अघोरनाथ प्रसन्न थे। स्नेहवश वे उनकी पीठ थपथपाने लगे। डॉ. नायडू को आमंत्रित करने पर उन्हें स्वयं पर गर्व हो रहा था।

इन सबसे बेखबर एक कोने में बैठी पंद्रह वर्षीया सरोजिनी तीखे नयन-नक्श वाले उस युवक को एकटक देख रही थी। उनके विचारों ने उसे सम्मोहित-सा कर दिया था। उनकी कही गई एक-एक बात कानों में गूँज रही थी। उसके मन-मस्तिष्क में विचित्र-सी हलचल होने लगी।

परिचर्चा समाप्त होने के बाद अघोरनाथ ने गोविंदराजुलु का अपने परिवार से परिचय करवाया। सरोजिनी के काव्य-प्रेम के बारे में डॉ. नायडू बहुत कुछ सुन चुके थे। दोनों के बीच अभिनंदन के साथ प्रश्नों एवं प्रत्युत्तरों का आदान-प्रदान हुआ। यही वह समय था, जब वे दोनों प्रेम की प्रथम अनुभूति से सरोबार हुए। जहाँ डॉ. नायडू के प्रगतिशील विचारों ने सरोजिनी के हृदय को अपनी ओर खींच लिया था, वहीं उनका मासूमियत भरा चेहरा डॉ. नायडू के मन की गहराइयों में उतर गया। प्रेम ने भावुक सरोजिनी पर कितना गहरा प्रभाव डाला था, इसका अनुमान उनकी प्रारंभिक कविताओं से लगाया जा सकता है। भावुकता की अधिकता के कारण वे अस्वस्थ भी रहने लगी थीं, जो जीवनपर्यंत उनके साथ बनी रही।

ब्रह्म-विवाह विधेयक

वैदिक काल से ही भारतीय समाज जातिगत भेदभाव से जूझता रहा है। चार वर्ण और प्रत्येक वर्ण में अनेक जातियों एवं उप-जातियों का निर्धारण प्राचीनकाल से चले आ रहे सामाजिक ताने-बाने को स्पष्ट करता है। यद्यपि समाज-व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए यह विभाजन किया गया था, लेकिन इससे लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हुई। लोग जातिगत सीमाओं में बँधकर रह गए। शनै:-शनै: ये सीमाएँ कट्टरवाद और संकीर्ण सोच का रूप लेती गईं। इनका अनुसरण करने वाले अपने-अपने समाज में प्रतिष्ठित हुए, जबकि उदारवाद के नाम पर इन्हें लाँघने वालों

को जाति से बहिष्कृत कर दिया गया। आज जब भारतीय समाज के कई हिस्सों में जातिगत भेदभाव का वीभत्स स्वरूप दिखाई दे जाता है, तो उन्नीसवीं सदी में इसके कुप्रभाव का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे जटिल समय में प्रसिद्ध ब्रह्म-समाजी केशवचंद्र सेन समाज-सुधार के लिए सतत प्रयासरत् थे। इसमें डॉ. अघोरनाथ और मुल्ला अब्दुल कय्यूम जैसे विचारक उनके साथ थे।

उन दिनों जाति से बाहर विवाह करना अपमान और पाप की श्रेणी में आता था। केशवचंद्र इसका गहन विश्लेषण कर रहे थे। उनका मत था कि विभिन्न जातियों के बीच वैवाहिक संबंध स्थापित करने से समाज में एकजुटता और आपसी समन्वय बढ़ेगा, जिससे राष्ट्र सुदृढ़ होगा। उनके विचारों से प्रभावित होकर अघोरनाथ ने हैदराबाद की कौंसिल में 'ब्रह्म-विवाह विधेयक' का प्रस्ताव रखा। इसके अंतर्गत जातिगत बंधनों से ऊपर उठकर विवाह के इच्छुक भारतीयों को सिविल मैरिज की स्वीकृति देने की माँग की गई थी। संकीर्ण मानसिकता वाले लोगों की रूढ़िवादिता पर यह विधेयक वज्राघात की तरह था। उन्होंने अपने-अपने स्तर पर इसका पुरजोर विरोध किया, लेकिन अघोरनाथ और केशचंद्र सेन के प्रयासों के फलस्वरूप अंततः विधेयक को मंजूरी मिल गई।

परिणय का सूत्रपात

सन् 1898 में सरोजिनी इंग्लैंड से भारत लौट आई थीं। अब वरदा सुंदरी को उनके विवाह की चिंता सताने लगी। इस विषय में उन्होंने पति से विचार-विमर्श किया। 'सरोजिनी के मन में डॉ. गोविंदराजुलु नायडू के प्रति अगाध प्रेम है', इससे वे भली-भाँति परिचित थे। डॉ. नायडू मन-ही-मन उन्हें पसंद करते थे, इसमें भी कोई संदेह नहीं था।

अघोरनाथ ब्राह्मण थे, जबकि डॉ. नायडू ब्राह्मण नहीं थे। दो विपरीत जातियों के बीच वैवाहिक-संबंध समाज के ठेकेदारों को विचलित कर सकता था, लेकिन अघोरनाथ सामाजिक सुधार के पक्षधर तथा 'ब्रह्म-विवाह विधेयक' के समर्थक थे। उन्होंने उन दोनों का विवाह करवाने का निश्चय कर लिया। इससे एक ओर उनकी पुत्री को मनोवांछित वर मिल रहा था, तो वहीं दूसरी ओर वे समाज के सामने आदर्श प्रस्तुत कर रहे थे। डॉ. नायडू के परिवारजन इस रिश्ते से सहमत थे।

अंततः दिसंबर, 1898 में सरोजिनी और गोविंदराजुलु परिणय-सूत्र में बँध गए। ब्रह्म-विवाह विधेयक के अंतर्गत होने वाला यह प्रथम विवाह था। मद्रास में आयोजित इस विवाह की सारी रस्में ब्रह्म-समाज के अनुसार पूर्ण की गईं।

हैदराबाद में वरदा सुंदरी ने मुसलिम महिलाओं के लिए विवाहोत्सव का आयोजन किया। इसमें प्राचीन और नवीन संस्कारों का समावेश किया गया था। इसका उल्लेख करते हुए सरोजिनी ने एडमंड गॉस को लिखा था–'मेरी माँ ने मुसलिम महिलाओं के लिए एक विराट स्वागत समारोह का आयोजन किया। इस अवसर पर गाने वाली महिलाओं ने महामहिम निजाम की गजलों में से चुनी हुई सुंदर गजलें गाईं।'

इस प्रकार सरोजिनी चट्टोपाध्याय विवाह के उपरांत सरोजिनी नायडू बन गईं।

गृहस्थ जीवन का आरंभ

विवाहोपरांत डॉ. नायडू और सरोजिनी हैदराबाद में निजाम शाही रोड पर बने एक बँगले में रहने लगे। उन्होंने इसका नाम रखा, 'द गोल्डन थ्रैशोल्ड' अर्थात् 'स्वर्णिम देहरी'। जैसाकि भारत में युवतियों से अपेक्षाएँ की जाती हैं, सरोजिनी ने गृहस्थी की जिम्मेदारी सँभाल ली। उनकी सुघड़ता ने डॉ. नायडू को घर की ओर से निश्चिंत कर दिया था।

सन् 1899 में सरोजिनी ने माता बनने का सौभाग्य प्राप्त किया। पुत्र का नाम रखा गया, 'जयसूर्य'। उसके बाद 'पद्मजा', 'रणधीर' और 'लीलामणि' का जन्म हुआ। यद्यपि सरोजिनी ने पाँचवीं संतान को भी जन्म दिया था, लेकिन नामकरण से पूर्व ही वह नवजात शिशु काल का ग्रास बन गया। इस प्रकार वर्ष 1904 तक उनका घर बच्चों की किलकारियों से गूँजने लगा।

पुत्र-पुत्रियों से संपन्न सरोजिनी अत्यंत प्रसन्न थीं। इस प्रसन्नता को उन्होंने कविताओं के माध्यम से प्रदर्शित किया था, जो उन्होंने अपनी चारों संतानों को समर्पित कीं। आगे चलकर जयसूर्य संसद् का एक कुशल तथा योग्य सदस्य बना, पद्मजा ने पश्चिम बंगाल के गवर्नर का कार्यभार सँभाला, जबकि लीलामणि विदेश

मंत्रालय में महत्त्वपूर्ण पद पर नियुक्त हुई।

प्रकृति-अनुरागी सरोजिनी ने घर में कई पशु-पक्षी पाले हुए थे। इनमें घोड़े, बिल्लियों, चिड़ियों से लेकर चीते और शेर के दो शावक भी सम्मिलित थे। इस संदर्भ में वे कहा करती थीं, ''इससे मुझे प्रकृति के अधिक निकट रहने का अहसास होता है, जो मेरे काव्य-लेखन के लिए संजीवनी सदृश है।''

गृहस्थ-जीवन में सरोजिनी कितनी आनंदित और संतुष्ट थीं, यह साइमंस को लिखे उनके एक पत्र से ज्ञात होता है। पत्र के अनुसार—

''आपको शायद मालूम नहीं है कि मेरे सामने हवा में कुछ सुंदर कविताएँ तैर रही हैं और ईश्वर ने कृपा की तो मैं अपनी आत्मा को जाल की तरह बिछा दूँगी और उन्हें इस साल पकड़ लूँगी, परंतु शर्त यही है कि ईश्वर मुझे थोड़ा सा स्वास्थ्य प्रदान करें। मुझे अपना जीवन पूर्ण बनाने के लिए केवल इतनी सी वस्तु की आवश्यकता है, क्योंकि शेली ने जिस 'आनंद की आत्मा' का उल्लेख किया है, वह मेरे छोटे-से घर में निवास करती है। मेरा बगीचा पक्षियों के संगीत से तथा लंबा मेहराबदार बरामदा बच्चों से भरा-पूरा है।''

□

7

अस्वस्थता और काव्य-सृजन

''मेरा विचार है कि बचपन में मुझे कविता लिखने का कोई विशेष शौक नहीं था, हालाँकि मेरा स्वभाव बहुत ही कल्पनाशील और स्वप्निल था। पिता के मार्गदर्शन में मुझे कठोर वैज्ञानिक रीति से प्रशिक्षण मिला था। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मुझे एक महान् गणितज्ञ या वैज्ञानिक बनना चाहिए, लेकिन मुझे उनसे और अपनी माँ से काव्य-प्रेम की जो प्रवृत्ति विरासत में मिली थी, वह अधिक सशक्त सिद्ध हुई।

''जब मैं मात्र ग्यारह वर्ष की थी, तब एक दिन बीजगणित के एक सवाल के साथ जूझ रही थी। बार-बार प्रयास करने पर भी उसका सही उत्तर नहीं निकल रहा था। उसी समय मुझे एक कविता सूझी। मैंने उसे लिख लिया। उस दिन से मेरे कवि जीवन का आरंभ हुआ।

''तेरह वर्ष की आयु में मैंने एक लंबी कविता लिखी, 'लेडी ऑफ द लेक; छह दिन में तेरह सौ पंक्तियाँ। उसी वर्ष मैंने दो हजार पंक्तियों का एक नाटक लिखा। यह पूरी तरह से भावनामय सृजन था, जो बिना किसी पूर्व चिंतन के हुआ था। उसका उदय चिकित्सक के उस आदेश के उल्लंघन के क्षणिक आवेश से हुआ था, जिसके अनुसार मुझे बीमार घोषित कर दिया गया था और पुस्तक छूने तक की मनाही कर दी गई थी।

''लगभग इसी समय मेरा स्वास्थ्य स्थायी तौर पर खराब हो गया और मेरा नियमित अध्ययन का क्रम भंग हो गया। इस क्षति की पूर्ति के लिए मैंने आगे जाकर घोर स्वाध्याय किया। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, मेरा अधिकांश अध्ययन चौदह से सोलह वर्ष की अवस्था के बीच हुआ। मैंने एक उपन्यास लिखा और डायरियों के अनेक मोटे-मोटे पोथे लिख डाले। उन दिनों मैं बहुत गंभीर थी।''

सरोजिनी नायडू द्वारा लिखित उपरोक्त पंक्तियों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उनके काव्य-सृजन के साथ उनकी अस्वस्थता का आरंभ हो चुका था, जो जीवनपर्यंत बनी रही। अस्वस्थता का यह भाव उन्हें आनंद और प्रसन्नता से खींचकर एकाकीपन तथा उदासी की सीमाओं में ले जाता। जीवन की क्षण भंगुरता का उन्हें अहसास होने लगा था। उनकी इस स्थिति के बारे में उनकी

बहन ने लिखा है–'अस्वस्थता के कारण वे मृत्यु के बारे में बहुत सोचती थीं और प्राय: इस ढंग से बोलती थीं, मानो वे मृत्यु के कगार पर खड़ी हों।'

यह बात सच है कि अस्वस्थता ने उन्हें जीवन-मृत्यु के रहस्यवाद को जानने के लिए प्रेरित किया, लेकिन वे इसमें इतनी अधिक डूब गईं कि जीवन के प्रति उनकी सोच निराशावादी होती चली गई, जो उनके लेखन और व्यवहार में झलकने लगी थी। एक बार उन्होंने साइमंस को लिखा था–''मैंने भी क्षण-क्षण में जीने के सूक्ष्म दर्शन का अभ्यास कर लिया है। यह 'प्रत्यक्षत: कल मर जाना है। इसलिए आज खाओ, पियो और मौज उड़ाओ', के इपीक्यूरियन सिद्धांत सरीखा प्रतीत होता है, तथापि यह एक सूक्ष्म दर्शन है। मैंने ऐसे अनेक कल बिताएँ हैं, जिनमें मैंने मौत से लोहा लिया है और वाक्य में निहित सत्य को पूरी तरह पहचान लिया है। मेरे लिए वह भाषा का अलंकार नहीं रहा, वरन् यथार्थ तथ्य बन गया है। किसी भी कल मैं मर सकती हूँ।''

उन्हें जानने वालों का कथन था, 'शायद वे ऐसा सोचने लगी थीं कि उनका जीवन युवावस्था में ही समाप्त हो जाएगा। उनके मस्तिष्क में यह आशंका बस गई थी। इसी ने उनमें हताशा और गहरी निराशावादिता पैदा कर दी थी।'

यद्यपि निरंतर अस्वस्थता के कारण सरोजिनी निराशावाद की ओर झुक गई थीं, तथापि मनन-चिंतन-अध्ययन का उन्होंने साथ नहीं छोड़ा था। विवाह के बाद भी वे अपनी संवेदनाओं को काव्य-रूप में लिखती रहीं। प्रात:काल जल्दी उठकर वे सारे काम निपटा लेतीं, फिर फुरसत के क्षणों में कागज-कलम लेकर नई रचनाओं का सृजन करतीं। उनके काव्य ने हैदराबाद में उनके नाम की धूम मचा दी, लेकिन अस्वस्थता के चलते उनके लेखन में कमी आ गई थी। दिसंबर, 1903 में सरोजिनी नायडू ने एडमंड गॉस को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने काव्यात्मक उपलब्धियों के साथ-साथ अपनी अस्वस्थता का भी उल्लेख किया था। पत्र के अनुसार–

''मैं आपकी ओर से कठोर आलोचना की अपेक्षा रखकर पाँच नन्ही सी कविताएँ आपको भेज रही हूँ। ये मेरी पिछले सप्ताह की कृतियाँ हैं, इस पूरे वर्ष का सृजन। 'मधु बालक' के दो छंद आपको ज्ञात ही हैं। ये बहुत समय पूर्व रचे गए थे। छोटा सा 'हिना' (मेहंदी) गीत मुझे बहुत आनंद देता है। हिना एक कालातीत राष्ट्रीय संस्कृति का अनिवार्य अंग बन गई है। भारत में बालिकाएँ और विवाहित महिलाएँ हिना की पत्तियों को पीसकर उससे अपनी हथेलियों और नाखूनों को सजाती हैं, जिससे उन पर गहरा लाल रंग उभर आता है। यह प्रसन्नता और उत्सव का प्रतीक बन गई है।

''निजाम का 'प्रशस्ति-गीत' दो दिन पूर्व ही रमजान की दावत के सम्मान

में आयोजित विराट् दरबार में उन्हें मेरी ओर से भेंट किया गया था। उसके साथ प्रसिद्ध उर्दू शायर ने उसका उर्दू अनुवाद भी पेश किया था। उसने मेरी अंग्रेजी कविता के सादे वस्त्रों को लेकर पूर्व की भाषा-कला के सुनहरे मोतियों से कशीदाकारी करके प्रस्तुत किया था।

''मैं तो स्वयं निजाम के दरबार में पाँच सौ पेटीबंद दरबारियों के बीच जाने का स्वप्न भी नहीं देख सकती थी। यदि कहीं मैं ऐसा कर बैठती, तो भारतवर्ष में चर्चा का विषय बन जाती। जहाँ तक मेरी जानकारी है, भारतीय परंपरा के इतिहास में यह भी अपने-आप में एक नितांत नई बात है कि एक महिला की ओर से पूरे दरबार में शासक को कविता भेंट की गई। यह भी परंपरा की दृष्टि से वर्जित है।

''अब निजाम का दरबार ही भारत का एकमात्र पूर्वी दरबार बचा है, जिसमें सामंतकालीन शान-शौकत बाकी है। उसे देखकर अलिफ-लैला की दास्तान याद आ जाती है। मेरा विचार है कि भारत के सभी देशी राजाओं में निजाम सबसे अधिक सुंदर और मेधावी हैं, लेकिन दु:खपूर्वक कहना पड़ता है कि उनकी स्थिति सबसे अधिक करुणाजनक है। वे एक कवि के यथार्थ एकाकीपन को छिपाने के लिए राजपद की समस्त शान-शौकत और मूर्खतापूर्ण तड़क-भड़क का सहारा लेते हैं।

''यदि भारतीय जाति अपने सुखद काल में होती और उन्हें अवसर मिलता, तो वे एक श्रेष्ठ नेता सिद्ध होते, लेकिन आज वे पूर्व के हेमलेट-भर रह गए हैं। उनके गीत बहुत सुरुचिसंपन्न और हृदयस्पर्शी हैं। उनमें बर्न्स का-सा तरल रहस्यवाद और प्रशांत मानवीय सरलता के साथ टेनीसन की कोमल कला और संगीत माधुरी का प्रयोग हुआ है। उनके ये गीत उनकी चारों राजधानियों में दरबारियों और किसानों द्वारा गाए जाते हैं और गरीबों को भी वे समान रूप से सुहाते हैं।

''मुझे खेद है कि मैं इन छोटी कविताओं की अपेक्षा कोई अच्छी भेंट भेजने में असमर्थ हूँ। यह मेरी विवशता है, क्योंकि मैं पूरे साल भर बहुत अधिक अस्वस्थ रही हूँ। इस बीच अधिक-से-अधिक एक या दो सप्ताह ठीक रह पाती कि फिर बीमार पड़ जाती, यह क्रम चलता रहा।

''यदि अगले वर्ष ईश्वर ने मुझे समय-समय पर अस्वस्थता से ऐसे अवकाश प्रदान कर दिए, तो मेरा इरादा है कि मैं काव्य के समूचे सुनहरे ईंट-मसाले से निजाम के साम्राज्य के विस्मृत नाटकों, गाथाओं और उत्कृष्ट सौंदर्य की पुनर्रचना करूँगी।

''कवियों ने हमेशा अपनी रचनाओं में अतीत के सौंदर्य को सजीव किया है। हैदराबाद, औरंगाबाद, गुलबर्गा और वारंगल की प्राचीन गौरवगाथा की पुनर्रचना में मुझे जीवन की कृतार्थता का आभास होता है।''

❑

8 गोखले : गुरु और प्रणेता

"महिलाओं के लिए शिक्षा कितनी जरूरी है, उनकी शिक्षा पर कितना ध्यान देना चाहिए, इस संदर्भ में अब तक अनगिनत भाषण दिए जा चुके हैं। प्रतिवर्ष भाषण दिए जाते हैं, महिलाओं को शिक्षित करने का मुद्दा उठाया जाता है, लेकिन वे सब बातें और वायदे खोखले हैं। महिलाओं की शिक्षा केवल मजाक बनकर रह गई है। जब भी महिलाओं की शिक्षा की बात आती है, तो महिलाएँ एक ओर तथा पुरुष दूसरी ओर होते हैं। पुरुषों को लगता है कि अगर हमारी औरतें पढ़ गईं, तो घर का कामकाज कौन करेगा? अगर वे शिक्षित हो गईं, तो वे स्वयं को श्रेष्ठ समझने लगेंगी। मुझे हँसी आती है पुरुषों की इस सोच पर। वे कितना गलत सोचते हैं।

"21वीं सदी में पहुँचने के बाद भी हम महिलाओं की पढ़ाई के बारे में केवल सोच रहे हैं। मेरे विचार में यह सोचने का नहीं, अपितु करने का समय है।

"भागदौड़ भरी जिंदगी में जब हम देश के विकास के लिए इतने हाथ-पैर मार रहे हैं तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसमें सबसे बड़ा योगदान महिलाओं का है, परंतु मुझे नहीं लगता इस सच्चाई को पुरुष स्वीकारते हैं। वे यह नहीं समझते कि अगर महिलाएँ पढ़ी-लिखी होंगी, तो वे कंधे-से-कंधा मिलाकर उनके साथ चल सकती हैं, आवश्यकता पड़ने पर उनका साथ दे सकती हैं।

"एक पत्रकार ने एक भारतीय पत्रिका में नारी-शिक्षा का मुद्दा उठाते हुए प्रश्न किया था कि 'महिलाओं को शिक्षा देना चाहिए या नहीं?' इसका उत्तर देते हुए महिलाओं ने स्वयं कहा था कि 'हमें शिक्षा चाहिए।' लेकिन जब पुरुषों की बात आई, तो उन्होंने स्वयं को दो हिस्सों में बाँट लिया। कुछ ने नारी-शिक्षा का समर्थन किया, जबकि अधिकांश ने इसे पूरी तरह से नकार दिया। उनका कथन था कि 'यदि महिलाएँ अपना समय पढ़ाई में खर्च करेंगी, तो उनका काम कौन करेगा? उनके बच्चे कौन सँभालेगा? घर के बड़े-बुजुर्गों की

सेवा कौन करेगा?' इसके विपरीत कुछ पुरुष ऐसे भी थे, जो नारी को शिक्षा देने के पक्ष में थे, किंतु सीमाओं में बाँधकर। वे स्वयं निर्धारित करना चाहते थे कि उन्हें क्या पढ़ाया जाए और क्या छोड़ा जाए।

''लेकिन मैं आप लोगों को यह बता दूँ कि शिक्षा की कोई सीमा नहीं होती। आप यह नहीं कह सकते कि कुछ पढ़ाओ और कुछ छोड़ दो। मुझे तो लगता है कि आप लोग शिक्षा का मतलब जानते ही नहीं हैं। शिक्षा को कोई समझ ही नहीं पाया, शिक्षा को कोई नाप नहीं सकता। शिक्षा हर कोई ग्रहण कर सकता है, चाहे वह गरीब हो या अमीर। शिक्षा हमारा हक है, तो फिर एक पुरुष शिक्षा के विरुद्ध कैसे जा सकता है?

''मैं पुरुषों को कहना चाहती हूँ कि जो आपके पूर्वजों ने किया, वही आप कर रहे हैं। जैसे उन्होंने अपनी औरतों को घरों की चारदीवारी में कैद करके शिक्षा से वंचित रखा, वैसे ही आप भी नहीं चाहते कि वे पढ़ें। आप यह भूल रहे हैं कि औरतों को पढ़ाने में ही राष्ट्र के साथ-साथ संपूर्ण विश्व की उन्नति है। अगर औरत पढ़ गई, तो विश्व का कल्याण स्वयं ही हो जाएगा। यदि एक औरत बच्चे को झूला झुला सकती है, तो वह विश्व को भी चला सकती है। इतनी शक्ति है नारी में।''

सरोजिनी नायडू ने उपरोक्त व्याख्यान सन् 1906 में अखिल भारतीय सामाजिक सम्मेलन में महिलाओं की शिक्षा से संबंधित प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय दिया था।

सभा में तत्कालीन भारतीय राजनीति के प्रमुख स्तंभ गोपालकृष्ण गोखले भी उपस्थित थे। यद्यपि सरोजिनी के बारे में वे बहुत कुछ सुन चुके थे, लेकिन उनका व्याख्यान सुनने का यह प्रथम अवसर था। नारी-शिक्षा के संबंध में सरोजिनी के प्रगतिशील विचारों ने उन्हें अत्यंत प्रभावित किया। उनके प्रति अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था-''मैं तुम्हें अपनी ओर से अत्यधिक सम्मान और उत्साहपूर्ण बधाई देता हूँ। तुम्हारा भाषण श्रेष्ठतम कोटि की बौद्धिक वक्तृता से कहीं अधिक एक पूर्ण कलाकृति था। हम सबने पल-भर के लिए ऐसा अनुभव किया कि हम किसी उन्नत स्तर तक उठ गए हैं।'

सरोजिनी नायडू और गोखले के बीच प्रथम परिचय शीघ्र ही प्रगाढ़ मित्रता में बदल गया।

9 मई, 1866 को महाराष्ट्र में जन्मे गोपालकृष्ण गोखले की गणना भारत के महान् नायकों में की जाती है। निर्धन परिवार से संबंधित होने पर भी अथक परिश्रम और लगन के बल पर उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की।

जीवन के प्रारंभिक दिनों में वे ब्रिटिश सरकार के अधीनस्थ विभाग में क्लर्क का कार्य करते थे, लेकिन बाद में नौकरी छोड़कर वे तत्कालीन राजनीति की ओर अग्रसर हुए। शीघ्र ही वे देश के प्रसिद्ध नेता के रूप में पहचाने जाने लगे।

गोखले का व्यक्तित्व कितना विराट् था कि इसका वर्णन करते हुए गांधीजी ने लिखा था–'उन्होंने मुझे स्नेहसिक्त स्वागत प्रदान किया और उनके व्यवहार ने तुरंत मेरा हृदय जीत लिया। फिरोजशाह मेहता मुझे हिमालय जैसे लगे, लोकमान्य तिलक सागर के समान, किंतु गोखले गंगा सरीखे थे। हिमालय अनुल्लंघनीय है और सागर को भी सरलता से पार नहीं किया जा सकता, लेकिन गंगा हमें पवित्र स्नान का निमंत्रण देती है।'

तत्कालीन महानायकों में उदारवादी नेता गोपालकृष्ण गोखले ने सरोजिनी को सर्वाधिक प्रभावित किया। उन्हें राजनीतिक जीवन के प्रारंभिक काल में गोखले का बहुमूल्य सान्निध्य और मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। इसलिए मित्र से अधिक वे उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानती थीं। यदि यह कहा जाए, तो अधिक उचित होगा कि गोखले ने सरोजिनी के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करते हुए उनके जीवन को भारतीय राजनीति की ओर मोड़ा। एक कवयित्री को काव्य-क्षेत्र से निकालकर राजनीतिक क्षेत्र में अग्रणी स्थान पर लाने का श्रेय गोखले को जाता है, इस तथ्य को सरोजिनी मुक्त हृदय से स्वीकारती थीं।

एक बार गोखले के साथ अपनी मित्रता के संदर्भ में सरोजिनी ने लिखा था–'एक सुखद सहानुभूति के साथ उनसे जो परिचय हुआ, वह बढ़ता ही गया। अंततः वह एक घनिष्ठ और स्नेहिल साहचर्य के रूप में पुष्ट हो गया, जिसे मैं अपने जीवन की शीर्ष उपलब्धियों में गिनती हूँ। यद्यपि हमारी मित्रता को संक्षिप्त और कटुतापूर्ण विलगाव के गंभीर क्षणों से भी गुजरना पड़ा, तथापि कुल मिलाकर वह प्राणदायी आध्यात्मिक आनंद और बौद्धिक चर्चा तथा असहमति की गतिप्रद चुनौती से सदा सजीव बना रहा।'

'मैं आपके प्रति कृतज्ञ हूँ'

कार्यों के अत्यधिक बोझ के कारण सरोजिनी नायडू का स्वास्थ्य खराब रहने लगा था। सन् 1913 में स्थिति अधिक बिगड़ने पर ऑपरेशन के लिए उन्हें एक निजी अस्पताल में भरती करवाया गया। 28 नवंबर को अस्पताल से ही उन्होंने गोखले को एक पत्र लिखा। इसमें उनके प्रति अपने मनोभावों को स्पष्ट करते हुए सरोजिनी ने लिखा था–

''मैं यह पत्र सुश्रूषागृह से लिख रही हूँ। कल मेरा ऑपरेशन होगा। चिकित्सकों का विचार है कि मैं सख्त बीमार हूँ और मुझे भी इतना मालूम है कि मैं बहुत थकी और काया से टूटी हुई हूँ। मेरी आत्मा चिड़िया की तरह है, जिसे पिंजरे में नहीं डाला जा सकता। अत: मैं अपने शरीर और वाँछा के देश (भारत) के बीच फैले सागर के पार आपको प्रेम और कृतज्ञता का संदेश भेज रही हूँ। मैं आपके प्रति इसलिए कृतज्ञ हूँ, क्योंकि आपने अपने श्रेष्ठ जीवन का उदाहरण हमारे सामने रखा और मातृभूमि के प्रति निष्काम सेवा के आदर्श द्वारा हमें प्रेरणा दी है।

''दु:ख और सुख स्त्रियों के जीवन के अर्थ और उसमें निहित रहस्यों का सचमुच बोध करा देते हैं, लेकिन मैं इन सुंदर और सार्थक प्रभावों के अतिरिक्त एक अन्य प्रभाव का उल्लेख कर रही हूँ, जिससे मैंने देशभक्ति तथा सर्वस्व बलिदान करने वाले सर्वोच्च और नि:स्वार्थ सेवा के महान् पाठ सीखे हैं और जिसके सम्मोहन से मेरे भीतर की नारी और कवयित्री ने आपके सिखाए हुए पाठ आत्मसात कर लिये हैं।

''आप मेरी पीढ़ी के लिए आशा की मशाल हैं। लंदन, ऑक्सफोर्ड, कैंब्रिज, एडिनबरा और जहाँ कहीं भी मैं भविष्य-निर्मात्री तरुण पीढ़ी के बीच गई, मुझे यह देखकर आनंद हुआ कि आप अभी तक उसके लिए एक मार्गदर्शक ज्योति और राष्ट्रसेवा के प्रतीक बने हुए हैं। मेरे जीवन में इससे बढ़कर आनंद और गौरव दूसरा नहीं हो सकता, लेकिन मैं अपनी पीढ़ी या उन युवकों की पीढ़ी की ओर से नहीं बोल रही हूँ, जिन्होंने मुझे अपना मित्र या साथी बना लिया है। मैं तो आपको अपना व्यक्तिगत आदर और प्रेम समर्पित करना चाहती हूँ, लेकिन मुझे शब्द नहीं मिल पा रहे और मैं स्वयं को इस संबंध में बहुत दीन महसूस कर रही हूँ।

''यदि मैं जीवित रही, तो आप जानते ही हैं कि मेरा जीवन उसी देश की सेवा के प्रति समर्पित होगा, जिसकी आपने अत्यंत निष्ठापूर्वक और प्रभावशाली रीति से सेवा की है, लेकिन यदि मेरे लिए ऐसी मधुर नियति संभव न हुई, तो मैं समझती हूँ कि आप मेरे शब्दों को याद रखें।

''तरुण पीढ़ी पर विश्वास कीजिएगा। वे यह महसूस करने लगे हैं कि एकता, सहयोग, निस्वार्थ उद्देश्यों के प्रति निष्ठा तथा सेवा के मामलों में ईमानदारी की भावना वे अनिवार्य संपदाएँ हैं, जो उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में अपने अंश के तौर पर भेंट करनी हैं। उन्हें इसकी चेतना है कि उनके कंधों पर कौन सी मूल समस्या हल करने की जिम्मेदारी है। इतना ही नहीं, प्रयोजनों और आदर्शों की एकता द्वारा तरुण पीढ़ी ने उसे अंशत: हल कर लिया है। जहाँ सर्वनिष्ठ कार्य और सर्वनिष्ठ आदर्शों का प्रश्न हो, वहाँ न कोई हिंदू है न मुसलमान।

''हम जिस महान् उद्देश्य के प्रति समर्पित हैं, उसकी सिद्धि के लिए तरुण पीढ़ी की विशेष प्रतिभा ही उसकी सफलता का रहस्य है। हमारे बच्चे फूट डालने वाली आस्थाओं से ऊपर उठकर देशभक्ति को जोड़ने वाली मधुर और अमर भाषा सीख रहे हैं।

''आप काम चाहते हैं, शब्द नहीं। वास्तविक सेवा चाहते हैं, लच्छेदार भाषा नहीं। लच्छेदार भाषा का जो युग बीत गया है, वह पुरानी पीढ़ी का युग था। नई पीढ़ी अधिक कठोर शालाओं में प्रकाशित हो रही है। वह जब बाहर आएगी, तो व्यावहारिक, ठोस, बुद्धिमत्तापूर्ण और सार्थक कर्म के लिए तैयार होगी।

''विदा! मैं बहुत थक गई हूँ, लेकिन मेरे मन में यह आशा और आस्था भरी हुई है कि हिंसा, रोष और विभाजन के माध्यम से नहीं वरन् धीरज, बुद्धिमत्ता और प्रेम के माध्यम से ही हम सफलता के लक्ष्य तक पहुँच पाएँगे।''

इलाज के बाद चिकित्सकों ने सरोजिनी नायडू को कुछ महीने तक आराम करने का परामर्श दिया। उन दिनों अस्वस्थ गोखले इंग्लैंड में रहते हुए स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे। अत: वे भी इंग्लैंड चली गईं।

□

गांधीजी का सान्निध्य

9

गांधी का जन्म 2 अक्तूबर, 1869 को काठियावाड़ के पोरबंदर नामक स्थान पर हुआ था। शिक्षा-प्राप्ति के बाद वे वकालत करने के लिए परिवारसहित दक्षिण अफ्रीका चले गए थे। उन दिनों अफ्रीका अंग्रेजों के अधीन था। वहाँ के स्थानीय लोगों तथा भारतीयों के साथ वे छुआछूत वाला व्यवहार करते थे। उन्हें सार्वजनिक तौर पर अपमानित किया जाता था। गांधीजी को भी इन परिस्थितियों से दो-चार होना पड़ा। जब अत्याचार असहनीय हो गए तो उन्होंने सत्याग्रह का बिगुल बजा दिया। देखते-ही-देखते लोग उनके आंदोलन में सम्मिलित होते चले गए। अनेक वर्षों तक शांतिपूर्वक संघर्ष करने के बाद अंततः सरकार को झुकना पड़ा और उनकी माँगें मान ली गईं। गांधीजी के अथक प्रयासों के कारण सरकार को अनेक सामाजिक कानूनों में फेर-बदल करना पड़ा।

गांधीजी की कीर्ति दक्षिण अफ्रीका से होते हुए भारत तक पहुँच चुकी थी। कांग्रेसी नेता उन पर भारत लौटने के लिए दबाव डाल रहे थे। चूँकि अफ्रीका में उनका कार्य समाप्त हो चुका था, अतः उन्होंने भारत लौटने का मन बना लिया। इसी बीच उन्हें गोखले का एक तार मिला, जिसमें उन्होंने आग्रह किया था कि वे उनसे लंदन में मिलते हुए भारत लौटें।

गांधीजी आग्रह टाल नहीं सके और कस्तूरबा के साथ 14 जुलाई, 1914 को लंदन की यात्रा पर चल पड़े।

यद्यपि अभी तक सरोजिनी को गांधीजी से मिलने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था, परंतु गांधीजी के बारे में उन्होंने बहुत कुछ सुन रखा था। स्वयं गोखले ने उन्हें महात्मा गांधी और उनके कार्यों के बारे में विस्तार से बताया था।

जिन्हें गोखले अपना आदर्श मित्र मानते हैं, जिन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा का मार्ग अपनाकर अकेले ही ब्रिटिश सरकार को झुकने के लिए विवश कर दिया, बड़े-बड़े राजनेता भी जिनका आदर-सम्मान करते हैं, वे महात्मा कैसे हैं?—उनसे मिलने के लिए वे आतुर थीं। जिन दिनों गांधीजी लंदन पहुँच रहे थे, उन दिनों वे भी वहीं थीं। उनके स्वागत की सभी तैयारियाँ उन्होंने स्वयं संपन्न कीं।

लेकिन जिस दिन अफ्रीका से आने वाला जहाज बंदरगाह पर पहुँचा, किसी कारणवश वे उस दिन स्वागत के लिए नहीं पहुँच सकीं। इसलिए उन्होंने अगले दिन उनसे मिलने का निश्चय कर लिया।

मित्रता का सूत्रपात

दिन का तीसरा पहर, केंसिंगटन के एक अनजाने हिस्से में सरोजिनी कुछ तलाश कर रही थीं। थोड़ी खोज-खबर करने के बाद उन्हें पुराना, जर्जर-सा एक मकान दिखाई दिया। उनके होंठों पर मुसकराहट खिल गई, उनकी तलाश पूरी हो गई थी। धीमे कदमों से लकड़ी की आड़ी-तिरछी सीढ़ियाँ चढ़ते हुए वे ऊपर की मंजिल पर पहुँचीं। सामने एक कमरे में घुटे सिर और छोटे कद का एक आदमी फर्श पर जेल का काला कंबल बिछाए बैठा था। द्वार की खुली हुई चौखट उसके सजीव चित्र पर फ्रेम की तरह लग रही थी। वह आदमी लकड़ी के कटोरे में से मथे हुए टमाटरों और जैतून के तेल का भोजन कर रहा था।

'ये मोहनदास करमचंद गांधी हैं!' एक प्रख्यात नेता के इस अनपेक्षित दर्शन से सरोजिनी के मुँह से अनायास हँसी फूट पड़ी।

गांधीजी ने आँखें उठाईं और हँसते हुए बोले, ''अच्छा, तुम निश्चय ही श्रीमती नायडू हो। इतनी अवज्ञाशील होने का साहस तुम्हारे अतिरिक्त और कौन कर सकता है? आओ, मेरे साथ खाना खाओ।''

''कितना घिनौना घोल-मट्ठा है यह।'' सरोजिनी ने सूँघते हुए उत्तर दिया।

गांधीजी से सरोजिनी नायडू की यह प्रथम भेंट थी। हास्य-व्यंग्य से युक्त इस सौहार्द्रपूर्ण वार्त्तालाप ने दोनों के बीच प्रगाढ़ मित्रता का सूत्रपात कर दिया। सरोजिनी के शब्दों में–'हमारी मित्रता सहकर्म में पुष्पित-पल्लवित तथा एक दीर्घ निष्ठापूर्ण शिष्यत्व में फलित हुई और जो भारत के स्वाधीनता संघर्ष में साथ मिलकर कार्य करने की तीस वर्षों से भी अधिक की अवधि में कभी एक घंटे के लिए भी खंडित नहीं हुई।'

कस्तूरबा का प्रभाव

न केवल गांधीजी ने, अपितु कस्तूरबा ने भी अपनी सादगी, सहनशीलता, दयालुता, धर्मपरायणता और सेवाभाव से सरोजिनी नायडू के मन-मस्तिष्क पर अमिट छाप छोड़ी। प्रथम भेंट के दौरान जहाँ वे गांधीजी के रंग में पूरी तरह से रंग गईं, वहीं कस्तूरबा के अद्‌भुत व्यक्तित्व ने उनके समक्ष नारी का ऐसा शक्ति-रूप प्रतिबिंबित किया, जो मार्ग में आने वाली समस्त कठिनाइयों का साहस और निडरता के साथ सामना करते हुए निरंतर पति का अनुसरण कर रही थी।

अब तक सरोजिनी अपने व्याख्यानों एवं कार्यों से नारी-समाज को जागरूक करती आई थीं, लेकिन कस्तूरबा में उन्हें आदर्श महिला का सजीव रूप दिखाई देने लगा था।

एक बार उन्होंने कहा भी था, ''यह मेरा सौभाग्य है कि मैं श्रीमती गांधी (कस्तूरबा) के इंग्लैंड में व्यतीत समय के बारे में बात कर रही हूँ। मैं उस मुलाकात को याद कर रही हूँ, जब मैं पहली बार उनसे इंग्लैंड में मिली थी। अगस्त की दोपहार का समय था। मैं बहुत जोश में लंदन में उस घर की सीढ़ियाँ चढ़ रही थी, जहाँ गांधीजी अपनी पत्नी के साथ ठहरे हुए थे। मैं उनकी महानता और सादगी देखने के लिए बहुत उत्सुक थी। उनसे मेरी भेंट हुई। वे जमीन पर बैठे भोजन कर रहे थे और उनकी पत्नी इतनी व्यस्त थी, मानो घर का सारा काम उनके ऊपर हो। उन्हें बाकी दीन-दुनिया की कोई खबर नहीं थी।

मुझे वह दिन भी याद है, जब श्रीमती और श्री गांधी का स्वागत करने के लिए भारत के विभिन्न प्रांतों के लोग पूर्व और पश्चिम से मिलकर इकट्ठे हुए थे। श्रीमती गांधी अपने पति के निकट बैठी हुई थीं और बहुत गर्व महसूस कर रही थीं। वे बहुत ही साधारण-सी थीं, लेकिन मेरे दिमाग में उनकी एक ऐसी याद है, जिसे मैं कभी भूल नहीं सकती। वे एक ऐसी औरत थीं, जिन्होंने अपने पति का प्रत्येक स्थिति में साथ दिया। जब वे अपने पति के साथ इंग्लैंड आई थीं, तब उनके अंदर की औरत का दिल ऊर्जा से भरा हुआ था। उनकी आँखों में अपनी धरती को लेकर बहुत सपने थे।''

कस्तूरबा गांधी और सरोजिनी नायडू के बीच जो प्रेम व स्नेह पनपा था, वह उनकी मृत्यु तक यथावत् बना रहा। जीवन के प्रत्येक मोड़ पर वे उनके साथ रहीं।

□

10

क्रूर आघात

गोखले का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन खराब होता जा रहा था। वे समझ चुके थे कि उनका अंतिम समय निकट है। इस बात की सरोजिनी को पूर्व सूचना देते हुए उन्होंने कहा था, ''चिकित्सकों का विचार है कि अधिकतर सार-सँभाल रखी जाए तो मैं अधिक-से-अधिक तीन वर्ष और जी सकता हूँ।''

सरोजिनी ने उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर उत्तर दिया था, ''आप जैसी महान् आत्माओं की मृत्यु नहीं होती, आशा, उत्साह, सत्यता, आदर्श के रूप में वे सदैव जीवित रहती हैं। अभी आपको बहुत कुछ करना है। गुलामी से जूझती भारतीय संस्कृति और समाज को आपकी आवश्यकता है। आप इतनी जल्दी अपने कर्तव्यों से मुख नहीं मोड़ सकते।''

इंग्लैंड के ठंडे वातावरण ने सरोजिनी को पुनः स्वस्थ कर दिया। यहाँ रहते हुए उन्हें कई महीने बीत चुके थे। अतः वे स्वदेश लौटने की तैयारी करने लगीं। 10 अक्तूबर, 1914 को भारत रवाना होते समय गोखले उन्हें विदा करने आए। विदाई के अवसर पर उन्होंने सरोजिनी से कहा था, ''मेरे विचार से अब हम कभी नहीं मिलेंगे, फिर भी यदि तुम जीवित रहो, तो यह सदा स्मरण रखना कि तुम्हारा जीवन देश की सेवा के लिए समर्पित है। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मेरा काम पूरा हो गया।''

सरोजिनी और गोखले की यह अंतिम भेंट थी।

पिता की मृत्यु

सरोजिनी नायडू के जीवन को जिन लोगों ने सर्वाधिक प्रभावित किया, उनमें उनके पिता अघोरनाथ भी सम्मिलित थे। पुरुष-प्रधान समाज का हिस्सा होते हुए भी उन्होंने पिता के कर्त्तव्यों का पूरी ईमानदारी एवं दृढ़ता से निर्वाह किया। समाज की रूढ़िवादिता और प्रचलित परंपराओं के विरुद्ध जाकर उन्होंने सरोजिनी को उच्च शिक्षा दिलवाई, जातिगत संकीर्ण सोच से ऊपर उठते हुए अंतरजातीय विवाह का समर्थन किया। उनके मानवतावादी और उदारवादी दृष्टिकोण की झलक सरोजिनी के काव्य में सहज ही देखी जा सकती है।

एक बार सरोजिनी नायडू ने अपने पिता के संदर्भ में साइमंस को लिखा

था–'मेरे पुरखे महान् स्वप्नद्रष्टा, महान् विद्वान् और महान् तपस्वी थे। मेरे पिता स्वयं स्वप्नद्रष्टा हैं। ऐसे महान् स्वप्नद्रष्टा और महापुरुष, जिनका जीवन शानदार और सफल रहा है। मेरा विचार है कि समूचे भारत में ऐसे विद्वान् बहुत अधिक नहीं मिलेंगे, जिनका ज्ञान मेरे पिता की अपेक्षा अधिक हो। उन्हें जितना स्नेह मिला, उतना कम लोगों को ही नसीब हुआ होगा। उनकी श्वेत दाढ़ी लंबी और घनी है तथा उनका चेहरा होमर जैसा है। वे हँसते हैं तो आसमान सिर पर उठा लेते हैं। अपनी समूची सम्पत्ति उन्होंने दूसरों की सहायता करने और कीमियागिरी–इन दो महान् उद्देश्यों पर लुटा डाली, परंतु जैसा आपको विदित ही है, यह कीमियागिरी एक कवि की सौंदर्य पिपासा, शाश्वत सौंदर्य पिपासा का ही भौतिक रूप था। स्वर्ण के निर्माता काव्यस्रष्टा होते हैं। ये दो सृजनहार रहस्यों के प्रति विश्व की गुप्त आकांक्षा को आलोकित करते हैं। मेरे पिता में संपूर्ण वैज्ञानिक प्रतिभा की मूलभूत जिज्ञासा की जो असाधारण क्षमता है, वही मुझमें सौंदर्यबोध बन गई है।'

सेवानिवृत्ति के बाद अघोरनाथ पत्नी सहित कलकत्ता आ गए थे। वृद्धावस्था उन पर धीरे-धीरे अपना प्रभाव डालने लगी थी। वे अस्वस्थ रहने लगे। स्वास्थ्य अधिक बिगड़ा, तो सरोजिनी को सूचित किया गया। अतः भारत लौटते ही वे कलकत्ता आ गईं। कुछ दिनों के बाद काल के क्रूर पंजों ने अघोरनाथ को जकड़ लिया और उन्होंने सदा के लिए आँखें मूँद लीं। सरोजिनी के लिए यह आघात असहनीय था। स्नेहिल पिता के रूप में उन्होंने एक मित्र, शिक्षक और मार्गदर्शक खो दिया था।

इस दुःख-भरे समय में सरोजिनी को गोखले का सांत्वना संदेश मिला, 'मैं चाहता हूँ कि कहीं निकट ही होता, ताकि मैं व्यक्तिगत रूप से तुमसे मिलने आ सकता। फिर भी मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारे गीत तुम्हारे शोक को अभिभूत कर लेंगे।'

8 फरवरी, 1915 को उत्तर देते हुए सरोजिनी ने उन्हें लिखा था–'आपके सहानुभूति भरे संदेश के लिए मैं अनुगृहीत हूँ। मैं यह पत्र उसी छोटे-से कक्ष से लिख रही हूँ, जिसमें मेरे पिता सदैव रहे थे और अपनी मृत्यु के दिन भी प्रातःकाल अंतिम समय तक वे बैठकर बातचीत करते रहे थे। उस समय भी उनमें जीवन और मृत्यु के प्रति उतना ही तेज, बुद्धिमत्ता और जादू-भरा आकर्षण था। वे जीवन, मृत्यु तथा अन्य प्रिय विषयों पर निरंतर चर्चा करते रहे थे। मैं यह भी अनुभव कर रही हूँ कि यह छोटा-सा कक्ष उनकी स्मृतियों का शरणस्थल बन गया है, जो उनके जीवित-जागृत होने का प्रमाण है। उन्होंने सदैव यह सिखाया था कि जीवन और मृत्यु वस्तुतः कुछ नहीं है। केवल विकास और उन्नति के एक स्तर से दूसरे स्तर

तक बढ़ते जाना ही जीवन है। इस बात को आज मैं समझी हूँ और बड़े दृढ़ विश्वास के साथ अब यह भी मानती हूँ कि इसे मानने से मेरा शोक किसी हद तक दूर हो गया है। मेरे पिता और मैं अब पहले से भी अधिक एकाकार हो गए हैं।

मुसलिम नगर हैदराबाद में मेरे पिता की मृत्यु पर जिस प्रकार शोक मनाया जा रहा है, वह उन भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए पाठ है, जो हिंदू-मुसलिम एकता का अर्थ नहीं समझना चाहते हैं। हम अपनी विधवा माँ को श्राद्ध के बाद उसी मुसलिम नगर में ले जा रहे हैं, जहाँ वे उन महिलाओं के बीच रहेंगी, जो उन्हें 'माँ' कहकर पुकारती हैं और जो मेरे पिता को पिता की तरह प्यार करती थीं। यह उस महान् समस्या की अनुभूति है, जिस पर भारत का भविष्य निर्भर है। मेरे ब्राह्मण माता-पिता ने उसे सुलझा लिया था। यह मेरे लिए सर्वोच्च गौरव और संतोष की बात है। मैं ईश्वर की आभारी हूँ। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं यह सोचे बिना ही कि वह कोई महान् कार्य सिद्ध करने में लगे थे, उनके कार्य को जारी रखूँगी।'

'हे शूरमना!'

19 फरवरी, 1915, कलकत्ता के लवलॉक रोड पर स्थित घर में सरोजिनी नायडू भारी मन से पिता की श्राद्ध-संबंधी तैयारियों में व्यस्त थीं, तभी एक व्यक्ति ने आकर उन्हें एक पत्र थमा दिया।

वे थोड़ी विस्मित हुईं और लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ने लगीं।

सहसा वे पसीने से नहा उठीं, चेहरे पर दु:ख और वेदना की लकीरें नजर आने लगीं; आँखों से आँसुओं की लड़ियाँ बह निकलीं। काँपते हाथों से पत्र छूटकर नीचे गिर चुका था। किसी तरह स्वयं को सँभालकर वे एक कुरसी तक पहुँचीं और 'धम्म' से उस पर बैठ गईं।

पत्र में उनके राजनीतिक गुरु और मित्र गोपालकृष्ण गोखले की मृत्यु का समाचार था। एक के बाद एक आघात ने मानसिक और आत्मिक रूप से उन्हें तोड़कर रख दिया।

कहते हैं, जल को कितना भी रोका जाए, वह बहने का रास्ता ढूँढ़ ही लेता है। मन के भाव भी बहते जल की तरह होते हैं। हृदय की गहराइयों में उन्हें कितना भी क्यों न रोका जाए, किसी-न-किसी माध्यम से वे बाहर आ जाते हैं। ऐसा ही कुछ सरोजिनी नायडू के साथ हुआ। पिता की मृत्यु को उन्होंने किसी प्रकार सहन कर लिया था, लेकिन गोखले की मृत्यु ने उन्हें व्यथित कर दिया। उनकी यही व्यथा

'स्मृति' नामक कविता में छलक आई। इसमें मन के उद्‌गार व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है—

'हे शूरमना!
हमारे युग के अंतिम आशा पुरुष,
मोहताज कहाँ तुम,
हमारी प्रेम-प्रशंसा के?
देखो, उन शोकाकुल कोटि-कोटि जनों को,
कर रहे जो परिक्रमा तुम्हारी चिता की!
कर लेने दो प्रज्वलित उन्हें,
अपनी आत्माओं की उस होमाग्नि से,
जल उठी है, जो तुम्हारे हाथ से गिरी
बहादुर मशाल से
कि जिससे हो सके,
हमारे वज्राहत राष्ट्र का पोषण संरक्षण
और रहे उन्नत उसकी एकता का मंदिर,
उस नित्योपासना में
सिखाई है जो तुमने।'

'गोखले एक मानव'

गोपालकृष्ण गोखले की मृत्यु पर सरोजिनी ने उन्हें जो मर्मस्पर्शी श्रद्धांजलि दी थी, वह 'गोखले : एक मानव' शीर्षक से 'बॉम्बे क्रॉनिकल' में प्रकाशित हुई। इसमें गोखले के साथ बिताए महत्त्वपूर्ण एवं यादगार क्षणों का उल्लेख किया गया था। सरोजिनी ने लिखा था–

'मैं इसे अपने लिए अनूठे गौरव की बात मानती हूँ कि मैं 22 मार्च, 1913 को लखनऊ में आयोजित मुसलिम लीग के ऐतिहासिक अधिवेशन में सम्मिलित हुई और मैंने उसमें भाषण भी दिया। इस अधिवेशन में लीग ने अपने नए विधान को

अंगीकार किया था। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि उसके द्वारा लीग ने राष्ट्रीय कल्याण और प्रगति के सभी मामलों में सहयोगी जाति के साथ निष्ठापूर्वक मेल-मिलाप का निश्चय किया था।

गोखलेजी से मिलने के बाद मैंने देखा कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विश्व-विख्यात नेता पत्रिकाओं के अवलोकन में व्यस्त था, जिनमें मुसलिम लीग और उसके नए आदर्शों की समीक्षा और समालोचना भरी पड़ी थी। जब उन्होंने मुझे देखा तो मेरी ओर हाथ फैलाकर ऊँचे स्वर में बोले, ''क्या तुम मुझे यह बताने आई हो कि तुम्हारी कल्पना सत्य थी?''

2 अगस्त, 1913 को उन्होंने कैक्सटन हॉल में एक विराट् और उत्साही छात्र समुदाय के समक्ष शानदार उद्घाटन भाषण दिया तथा उनके समक्ष देशभक्ति और आत्मोत्सर्ग के उन्नायक पाठ रखे। उनकी पीढ़ी के लोगों में एक अकेले उनमें ही इन पाठों को साधिकार और गरिमापूर्ण तरीके से प्रस्तुत करने की क्षमता थी।'

सरोजिनी नायडू इस बात को स्वीकारती थीं कि गोखले के साथ उनकी मैत्री में उच्च आदर्शों के साथ-साथ आध्यात्मिकता का भी समावेश था। इस संबंध में उन्होंने लिखा था–

'गोखले की महान् और साथ ही विरोधाभासपूर्ण प्रकृति के रहस्यों का अध्ययन मेरे लिए मानवीय विज्ञान का एक बहुमूल्य पाठ सिद्ध हुआ। वे राजनीतिक विश्लेषण और संश्लेषण की अनूठी प्रतिभा के धनी थे। सुसंयोजित तथ्यों और आँकड़ों से सुसज्जित अकाट्य तर्कों पर उनका पूर्ण अधिकार था और वे पूर्ण सहजता तथा निर्भीकता से उनका उपयोग करते थे। विरोध करते समय वे सौजन्य नहीं खोते थे, लेकिन उनकी पैनी दृष्टि तीखा वार करती थी। सम्मानपूर्ण समझौते के समय वे धैर्यपूर्वक गरिमा और साहस बनाए रखते थे। उनका राजनीतिक कौशल दूरगामी होता था और उसमें व्यापकता और संयम तथा ओज एवं प्रामाणिकता का अद्भुत सम्मिश्रण रहता था। उनका दैनिक जीवन सादगी के उच्च आदर्श और बलिदानों पर आधारित था। वे जन्मजात आदर्शवादी थे और चंचल तथा दुराशा से भरे इस जगत् में वे निरंतर किसी शाश्वत सत्य की खोज कर रहे थे। समस्त संघर्षों तथा अभीप्सा एवं शंकाओं की मर्मांतक व्यथा और आस्था के सम्मोहन के बीच भी उनमें मानवीय संबंधों और स्नेह की अदम्य प्यास बनी रहती थी।'

राजनीति की ओर

11

'जागो! हे माँ, जागो!
जीवित हो फिर से जाग उठो,
अवसाद त्याग अब
और दूर ग्रहों से संगमित भार्या-सी
जनो नया गौरव अपनी अकाल कोख से।
भविष्य तुम्हारा तुम्हें पुकारता,
लय संकुल स्वर में।
चंद्र-सम गौरव, गरिमा विस्तृत विजय की ओर।
जागो! हे सुप्त माँ, जागो!
और मुकुट स्वीकार करो।
तुम प्रभुत्वमय अतीत की थीं साम्राज्ञी जो कभी।'

घर में होने वाली परिचर्चाओं के कारण सरोजिनी नायडू सामाजिक क्षेत्र के प्रत्येक पहलू की अच्छी जानकार थीं। तत्कालीन समाज में व्याप्त उन दोषों एवं कुरीतियों का उन्हें भली-भाँति ज्ञान था, जिनका कुप्रभाव नारी-समाज पर पड़ रहा था। शोषित, पीड़ित, व्यथित नारी विकल नेत्रों से ऐसे महामानव की ओर देख रही थी, जो उनके अधिकारों के लिए प्रयत्न करता था। अंततः भावुक सरोजिनी ने इसका बीड़ा उठाया। वे कविताओं एवं व्याख्यानों द्वारा सार्वजनिक मंच से नारी-उत्थान का स्वर प्रखर करने लगीं। नारी की स्थिति सुधारने तथा समाज में उन्हें सम्मानीय स्थान दिलवाने के लिए उन्होंने अपने स्तर पर सशक्त प्रयास किए।

वर्ष 1902 में उन्होंने पहला सार्वजनिक भाषण दिया था, जिसने काव्यात्मक जगत् तक सीमित सरोजिनी को तत्कालीन भारतीय राजनीति की ओर मोड़ दिया।

केसर-ए-हिंद

नदी में आई भयंकर बाढ़ ने हैदराबाद को तहस-नहस कर दिया था। प्रकृति

की इस विनाशलीला ने बहुत से लोगों को निगल लिया, सहस्त्रों लोग बेघर होकर दर-दर भटकने के लिए विवश हो गए। खाद्यान्न की कमी और फैलती हुई महामारी ने हैदराबाद के अधिकांश हिस्सों को अपनी चपेट में ले लिया था। ऐसी विकट स्थिति में सरोजिनी नायडू ने बाढ़-पीड़ितों की सहायता का दायित्व उठाया। उनका स्वभाव अत्यंत कोमल और भावुक था; वे सहज ही सबमें घुल-मिल जाती थीं। इसी विशेषता के कारण शीघ्र ही उन्होंने बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए स्वयंसेवकों का एक संगठन खड़ा कर लिया।

सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े स्तर पर यह उनका प्रथम प्रयास था। उनके अथक परिश्रम एवं प्रयासों द्वारा हैदराबाद का अस्त-व्यस्त जीवन पुनः व्यवस्थित होने लगा। इसके साथ ही वे एक सशक्त समाज-सेविका के रूप में उभरकर सामने आईं और जन-जन में लोकप्रिय हो गईं।

सामाजिक क्षेत्र में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने वर्ष 1908 में उन्हें 'केसर-ए-हिंद' की उपाधि से सम्मानित किया।

लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन

''मैं स्वप्नों की मीनार पर खड़ी द्रष्टा मात्र हूँ। मैंने तीव्रगामी और विपदाग्रस्त एवं यदा-कदा अवरुद्ध, लेकिन इसके बावजूद अपराजेय कलात्मा को वांछित लक्ष्य की दिशा में विजय-यात्रा पर कूच करते देख लिया है। हम एक हैं और ऐसे दृढ़तापूर्वक एक हो गए हैं कि बाहर की कोई भी शक्ति, औपनिवेशिक आधिपत्य का अत्याचार भी, हमें हमारे अधिकारों और सुविधाओं से वंचित नहीं रख सकता। हमें उन सुविधाओं से वंचित नहीं रख सकता, जिनका अधिकार हमें प्राप्त हो गया है तथा जिनकी माँग हम एक आवाज से कर रहे हैं।

'शताब्दियाँ बीत गई हैं, पुरानी दरारें भर गई हैं, पुराने घाव भर गए हैं। हममें से प्रत्येक में यह सजीव चेतना आ गई है कि भविष्य की उच्चतम आशा मातृभूमि की एकतापूर्ण सेवा में सन्निहित होती है। हममें से कोई भी ऐसा क्षुद्र, दुर्बल और स्वार्थी नहीं है, जो यह न सोचे कि सेवा का आनंद सभी व्यक्तिगत सुखों से बढ़कर है। हमारे निजी दुःखों को सबसे अधिक राहत तब मिलती है, जब हम देश के लिए कष्ट उठाते हैं। उसकी पूजा से पापमुक्ति होती है। उसके लिए जीना जीवन की सर्वोच्च विजय है तथा उसके लिए मरना अमरत्व का अमूल्य मुकुट प्राप्त करना है।''

वर्ष 1916 में लखनऊ में आयोजित कांग्रेस अधिवेशन में सरोजिनी द्वारा दिए गए उपरोक्त भाषण को सुनकर श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो गए। किसी महिला द्वारा

इतना ओजपूर्ण एवं सारगर्भित भाषण देना उनके लिए अकल्पनीय था। अधिवेशन में युवा नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू भी सम्मिलित थे। महिला-वक्ता के मुख से निकलने वाला एक-एक शब्द उनके अंतर्मन को मथ रहा था। वे तल्लीनता से भाषण सुन रहे थे।

विदेशों में कार्यरत् भारतीय श्रमिकों, जिन्हें 'गिरमिटिया' कहा जाता था, उनकी दयनीय स्थिति का उल्लेख करते हुए सरोजिनी बोल रही थीं–

''हमारी महिलाओं ने विदेशों में जो कष्ट भोगे हैं, उसकी लज्जा को अपने हृदय के रक्त से धो डालो। आज रात आपने जो शब्द यहाँ सुने हैं, उन्होंने आपके भीतर दावानल सुलगा दी होगी। हे भारत के पुरुषो! उस दावानल को गिरमिटिया प्रथा की चिता बना डालो। आज रात मैं रोऊँगी नहीं। हालाँकि मैं एक स्त्री हूँ और यद्यपि अपनी माताओं और बहनों के अपमान को आप महसूस कर रहे होंगे, तथापि अपने प्रति हुए अपमान को मैं नारी जाति का अपमान समझती हूँ।''

भाषण की समाप्ति के साथ ही पूरा सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। काव्य-साम्राज्ञी ने ऐसे भावुक शब्दों का चयन किया था, जिन्होंने श्रोतागण के हृदय भेद डाले, उनका मन-मस्तिष्क आत्म-मंथन के लिए विवश हो गया।

अधिवेशन में सरोजिनी नायडू और जवाहरलाल नेहरू का परस्पर परिचय करवाया गया। इस प्रथम भेंट में ही सरोजिनी ने उनके मन पर ऐसी छाप छोड़ी, जो उनकी मृत्यु तक अमिट रही। उनके बीच का यह मधुर रिश्ता आगे चलकर और भी मजबूत हुआ।

सरोजिनी की वाक्-कला ने नेहरूजी को बहुत प्रभावित किया था। इसका वर्णन करते हुए उन्होंने कहा था, ''मुझे याद है, उन दिनों सरोजिनी नायडू के अनेक वक्तृतापूर्ण भाषणों का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके भाषण राष्ट्रीयता और देशभक्ति से ओत-प्रोत होते थे और मैं एक शुद्ध राष्ट्रवादी था। अपने अध्ययन काल में मेरे मस्तिष्क में जो अस्पष्ट-से समाजवादी विचार बन गए थे, वे अब लोप हो गए हैं और इसका श्रेय उन्हें ही जाता है।''

कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन

लखनऊ अधिवेशन के बाद से सरोजिनी नायडू की गिनती देश के राष्ट्रवादी नेताओं में होने लगी थी। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी उनकी भाषण-कला का लोहा मान चुके थे। उनका व्याख्यान आरंभ होते ही सभा में सन्नाटा व्याप्त हो जाता, श्रोतागण के हृदय जोश और उत्साह से भर उठते, उनकी रगों में बहने वाला रक्त उबलने लगता। देश में होने वाली लगभग प्रत्येक सभा का वे महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन गई थीं। जहाँ भी अधिवेशन या सभा का आयोजन होता, सरोजिनी उसमें विशेष रूप से आमंत्रित होतीं।

सन् 1917 में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में आयोजित किया गया। इस अवसर सरोजिनी नायडू ने स्वशासन के विषय में अपने विचार व्यक्त किए :

''कई वर्ष पहले हमारे आधुनिक राष्ट्र-निर्माता की इसी ऐतिहासिक नगर में स्वराज्य के अमर संदेश की घोषणा आपके कानों में गूँजी थी। मैं सोचती हूँ कि आपमें से एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं होगा, जिसके हृदय में अपने उस जन्मसिद्ध अधिकार के आह्वान की प्रतिक्रिया न हुई हो, जिससे दीर्घकाल तक आपको वंचित रखा गया है।

''आज हम यहाँ उनके संदेश को दोहराने और उनके द्वारा उद्घोषित सत्य की पुष्टि करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। हम उस कल्पना की पूर्ति की माँग करते हैं, जो उन्होंने उस स्मरणीय अवसर पर हमारे लिए की थी। मैं आपके सम्मुख संयुक्त

भारत की निर्वाचित प्रतिनिधि की हैसियत से केवल इसलिए खड़ी हो सकी हूँ, क्योंकि राष्ट्र की नारी-शक्ति आज आपके साथ खड़ी है, आपको यह प्रामाणित करने के लिए कि आप उत्तदायी और पूर्ण शासन के अधिकारी हैं। इससे बढ़कर और कोई उपयुक्त तथा अधिक तर्कसंगत प्रमाण खोजने की आवश्यकता नहीं है कि आपने भारत की नारी के स्वर को मुखरित होने का अवसर दिया तथा उसे भारतीय पुरुष वर्ग की कल्पना, माँग, उसके प्रयास तथा उसकी आकांक्षाओं की पुष्टि करने का अवसर देकर सहज और मौलिक न्याय भावना का परिचय दिया है।

याद रखिएगा कि प्रस्ताव का ब्योरा चाहे कुछ भी हो तथा आपकी धारणा के अनुसार व्यावहारिक राजनीति के तथ्य और तत्त्व चाहे जो भी हों, उनकी स्थायी प्रेरणा उस भावना में निहित है जिसके आधार पर आज इन माँगों और आकांक्षाओं की कल्पना उदय हुई है तथा जो अब तक चरम् शिखर पर जा पहुँची है।

हम क्या माँग रहे हैं? कुछ भी नया नहीं, कुछ भी चौंकाने वाला नहीं। हम केवल एक ऐसी वस्तु माँग रहे हैं, जो जीवन और मानवीय चेतना के लिए सनातन है, तथा जो संसार में प्रत्येक आत्मा का जन्मसिद्ध अधिकार है।

याद रखिए कि अपने प्रांतों में, अपने क्षेत्रों में आपको सजीव अवसर मिलने चाहिए तथा आपको अपने देश में अपनी विरासत से वंचित होकर देश-निकाले की स्थिति में गूँगे-बहरे की तरह जीने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए, जिनका उपयोग दूसरे राष्ट्र कर रहे हैं। वह समय अब बीत गया है, जब हम बौद्धिक और राजनीतिक बेड़ियों से जकड़े हुए दासता में संतुष्ट थे, क्योंकि अब फूट के दिन समाप्त हो गए हैं। आज इस महान् देश में कोई भी जाति दूसरी जाति से अलग नहीं रखी जा सकती। अब यह हिंदुओं और मुसलमानों का भारत नहीं रहा, अपितु एक संयुक्त भारत बन गया है।'

❑

12 रोलेट एक्ट का विरोध

प्रथम विश्वयुद्ध ने इंग्लैंड की समस्याएँ बढ़ा दी थीं। उसे युद्ध में उलझा देखकर भारत में स्वतंत्रता सेनानियों एवं क्रांतिकारियों ने विरोध का स्वर तीव्र कर दिया। इससे भारत में ब्रिटिश सरकार की स्थिति निरंतर बिगड़ती जा रही थी।

भारत न केवल इंग्लैंड में उत्पादित वस्तुओं की खपत तथा धन उगाहने का एक प्रमुख स्रोत था, बल्कि एशिया महाद्वीप में स्थापित उसकी शक्ति का केंद्र बिंदु भी था। सरकार किसी भी स्थिति में इस उपयोगी उपनिवेश को हाथ से जाने नहीं देना चाहती थी। अत: ब्रिटिश संसद् में एक अधिनियम पारित किया गया। इसका कार्य भारत में संचालित किसी भी तरह की क्रांतिकारी गतिविधियों एवं आंदोलनों को रोकना था। इसके अंतर्गत ब्रिटिश अधिकारियों को बिना जाँच-पड़ताल के किसी भी व्यक्ति को जेल में डालने तथा दमनकारी हथकंडों को अपनाने का अधिकार दिया गया था।

चूँकि इस एक्ट पर तत्कालीन ब्रिटिश न्यायाधीश 'सिडनी रोलेट' ने हस्ताक्षर किए थे, इसलिए इसे 'रोलेट एक्ट' कहा गया।

इस एक्ट के विरोध में 17 मार्च, 1919 को मद्रास में एक प्रस्ताव पेश किया गया। इसके अंतर्गत रोलेट एक्ट में से उन अंशों को निकालने की सिफारिश की गई, जो अन्यायपूर्ण तथा स्वतंत्रता एवं न्याय के सिद्धांतों के विपरीत थे तथा जिनसे राष्ट्र एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रभावित होने का भय था।

प्रस्ताव प्रस्तुत करने के बाद सरोजिनी ने सभा को संबोधित करते हुए कहा था–'आपको अचरज हो रहा होगा कि आज सभा के अध्यक्ष ने जो प्रस्ताव आपके सामने पढ़कर सुनाए हैं, उनको प्रस्तुत करने तथा मेरे आदरणीय गुरु महात्मा गांधी ने जो कुछ आपसे कहा है, उसके अर्थ-अभिप्राय-प्रयोजन की व्याख्या के लिए मैं किस हैसियत से और किस अधिकार के आधार पर आपके सामने खड़ी हुई हूँ। जब सुदूर अहमदाबाद में उस फूस के छप्पर वाली झोंपड़ी में, जिसमें निस्वार्थ महात्मा रहता है और स्वेच्छा से अपनाई गई दरिद्रता का जीवन व्यतीत करता है; हमारे उस छोटे से गुरु ने निश्चय किया है कि आतंकित और अत्याचार से पीड़ित भारत के शस्त्रागार में एक ही उपयुक्त शस्त्र बचा है, जो मशीनगन और तलवारों का शस्त्र नहीं, वरन् संपूर्ण आध्यात्मिक शक्ति का बुनियादी और अपराजेय अस्त्र है, जो भौतिक अस्त्र और अन्य राष्ट्रों की भौतिक शक्ति के विरुद्ध है। उसी क्षण हमने

अपने जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के रूप में अपने समस्त जीवन मूल्यों एवं जातिगत मापदंडों के अनुसार अपने निजी सुखों को समर्पित कर दिया।'

लेकिन सिफारिशों को अस्वीकृत करते हुए सरकार ने 18 मार्च, 1919 को रोलेट एक्ट पूर्ण रूप से प्रभावी कर दिया।

हड़ताल का आह्वान

एक्ट के लागू होते ही मानो अंग्रेजों को 'ब्रह्मास्त्र' मिल गया। उन्होंने अकारण ही अनेक नेताओं को जेलों में ठूँस दिया, शांतिपूर्वक एवं अहिंसात्मक प्रदर्शनों को भी प्रतिबंधित कर दिया। इससे जनता में रोष बढ़ता गया। गांधीजी ने राजनीतिक बंदियों को एक्ट से मुक्त रखने की अपील की। उन्होंने माँग की, 'सामाजिक अपराधों एवं राजनीतिक अपराधों को अलग-अलग श्रेणी में रखना चाहिए तथा उनके लिए अलग-अलग कानूनी प्रावधान होने चाहिए।'

लेकिन सरकार ने उनकी बात अनसुनी कर दी।

आगे की रणनीति निर्धारित करने के लिए गांधीजी ने स्वराज सभा के सदस्यों की एक बैठक की, जिसमें उमर सुभानी, शंकरलाल बैंकर, महादेव देसाई, अब्दुल्ला बरेलवी, अनसूया बहन साराभाई तथा स्वामी श्रद्धानंद के साथ-साथ सरोजिनी भी सम्मिलित हुईं।

गांधीजी ने रोलेट एक्ट के विरोध में हड़ताल करने का निश्चय कर लिया था। सभी को यह विचार उचित लगा। अंततः 30 मार्च, 1919 को देशव्यापी 'अंहिसात्मक हड़ताल' का आह्वान किया गया, लेकिन उन्हीं दिनों सरोजिनी अस्वस्थ हो गईं। गांधीजी चाहते थे कि आंदोलन में वे उनके साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलें। उनके ओजपूर्ण भाषण न केवल पुरुषों को, बल्कि महिलाओं को भी आंदोलन की ओर खींचने की क्षमता रखते थे। इसलिए तिथि आगे बढ़ा दी गई और हड़ताल के लिए 6 अप्रैल का दिन निश्चित हुआ। सभी जगह सूचना प्रेषित कर दी गई।

सत्याग्रह का स्थगन

दिल्ली में तिथि-परिवर्तन की सूचना विलंब से पहुँची, जिसके फलस्वरूप स्वामी श्रद्धानंद के नेतृत्व में वहाँ 30 मार्च को ही हड़ताल हो गई। इस अवसर पर

हिंदू-मुसलिम एकता का अद्‌भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हुए जामा मसजिद में लोगों ने एक विशाल जुलूस निकाला, लेकिन सरकार को यह सहन नहीं हुआ। भीड़ को तितर-बितर करने के लिए उन पर गोलियाँ चलाने के आदेश दे दिए गए, जिसमें अनेक लोग मारे गए।

इस बीच गांधीजी की घोषणा के अनुसार शेष भारत में 6 अप्रैल को हड़ताल हुई। जामा मसजिद में हुए नरसंहार के विरोध में सरोजिनी नायडू ने पायधोनी की एक मसजिद में बड़ा मर्मस्पर्शी भाषण दिया। विभिन्न संप्रदायों के बीच एकता का आह्वान करते हुए उन्होंने ओजपूर्ण शब्दों में कहा था :

'ब्रिटिश सरकार यदि सोचती है कि शक्ति-प्रदर्शन या बंदूकों के बल पर वह हिंदू-मुसलिम एकता को खंडित कर सकती है, तो उनकी यह सोच वास्तविकता से कोसों दूर है। हिंदू-मुसलिम का परस्पर सौहार्द्रपूर्ण संबंध सदियों से विद्यमान भारतीय संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है। भारतमाता के ये दोनों सिंह विदेशी साम्राज्य से भयभीत होकर घुटने टेकने वाले नहीं, अपितु बंदूकों से निकलने वाली गोलियों को सीने पर झेलने वाले हैं। हमारी एकता अखंडित और चिर स्थायी है, हमें एकजुट होकर ब्रिटिश सरकार के सामने यह सिद्ध कराना है। मैं देश के वीर और सच्चे सपूतों का आह्वान करती हूँ कि वे राष्ट्र के लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए आगे आएँ। वे आंदोलन-रूपी यज्ञाग्नि को इतना प्रज्वलित करें कि अत्याचारी ब्रिटिश साम्राज्य उसमें जलकर भस्म हो जाए।'

उनके आह्वान ने सोए हुए जनमानस को जगा डाला। देखते-ही-देखते देश-भर के सरकारी एवं गैर-सरकारी कामकाज ठप्प कर दिए गए। स्कूल-कॉलेज छोड़कर विद्यार्थी हड़ताल में सम्मिलित हो गए। यह आंदोलन 'रोलेट सत्याग्रह' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। देश के विभिन्न स्थानों में शांतिपूर्वक प्रदर्शन किए गए तथा गिरफ्तारियाँ दी गईं। स्थिति की गंभीरता को भाँपते हुए गांधीजी को बंदी बना लिया गया।

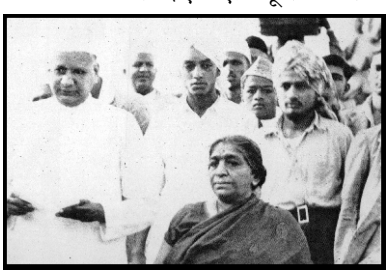

सरकार के इस कार्य ने आग में घी डालने का काम किया। गांधीजी के बंदी बनाए जाने से तनाव उत्पन्न हो गया, जिसके परिणामस्वरूप आंदोलनकारी अहिंसा का मार्ग छोड़कर हिंसा की ओर प्रवृत्त हो गए। बाद में गांधीजी ने इन घटनाओं के लिए स्वयं को जिम्मेदार ठहराते हुए रोलेट एक्ट के विरुद्ध छेड़े गए सत्याग्रह को स्थगित कर दिया।

पंजाब में डॉ. सत्यपाल और डॉ. सैफुद्दीन किचलू के नेतृत्त्व में रोलेट एक्ट का विरोध बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा था। अत: 10 अप्रैल को दोनों नेता बंदी बना लिए गए। सरकार के इस कृत्य से लोगों में रोष की लहर दौड़ गई। इसका जवाब माँगने के लिए जुलूस के रूप में वे कमिश्नर के बँगले की ओर चल दिए, लेकिन अधिकारियों के आदेश पर सैनिकों ने निहत्थे लोगों पर गोलियाँ चला दीं। कुछ ही देर में सड़क लाशों से पट गई।

जलियाँवाला हत्याकांड

13 अप्रैल का दिन था। पवित्र स्वर्णमंदिर के पास स्थित जलियाँवाला बाग लोगों से खचाखच भर चुका था। लगभग 6 हजार पुरुष, महिलाएँ और बच्चे बाग में उपस्थित थे। सभा का आयोजन रोलेट एक्ट के विरोध में किया गया था। प्रारंभ में जोशपूर्ण भाषण दिया गया, उसके तीन दिन पहले हुए नरसंहार पर सरकारी नीतियों की आलोचना की गई। सभा उफान पर थी। बीच-बीच में 'वंदेमातरम्' के उद्घोष से पूरा बाग गुंजायमान हो उठता।

इसी बीच पंजाब के तत्कालीन गवर्नर माइकल ओ' डायर को इस सभा की सूचना मिल गई। उसने अपने उपनाम वाले जनरल रेजिनोल्ड डायर को सभा रोकने का आदेश दिया। जनरल डायर शस्त्रों से युक्त 90 सैनिकों को साथ लेकर कुछ ही देर में सभास्थल पर पहुँच गया।

जलियाँवाला बाग चारों ओर से बड़ी-बड़ी दीवारों से घिरा हुआ था। इसमें प्रवेश करने का एक ही मार्ग था, परंतु वह भी इतना सँकरा था कि सिर्फ एक-एक करके बाग के अंदर या बाहर आया जा सकता था। डायर के आदेश पर सैनिक बाग में घुसकर मुख्य द्वार पर खड़े हो गए और लोगों की ओर बंदूकें तान दीं। इस सबसे बेखबर लोग शांतिपूर्वक बैठे हुए भाषण सुनने में मग्न थे।

सहसा बिना किसी पूर्व चेतावनी के डायर ने गोलियाँ चलाने का आदेश दे दिया। सैनिकों ने बंदूकों के मुँह खोल दिए और गोलियों की पहली बौछार ने पल-भर में ही अनेक लोगों को खून से नहला दिया।

इस अप्रत्याशित हमले की किसी ने कल्पना भी नहीं की थी। चारों ओर भगदड़ मच गई। कुछ देर पहले तक जो स्थान देशभक्ति के नारों से गूँज रहा था, वहाँ चीख-पुकार फैल चुकी थी। लोग जान बचाकर प्रवेश द्वार की ओर भागे, लेकिन उस ओर मुँह करने वालों को सैनिकों ने छलनी कर दिया। कोई चारा न देखकर लोग बाग की ऊँची-ऊँची चारदीवारी लाँघने की कोशिश करने लगे, लेकिन

असफलता हाथ लगी। बाग के बीचोबीच एक कुआँ था। जान बचाने के लिए औरतों ने बच्चों सहित उसमें छलाँग लगा दी, परंतु वह कुआँ भी काल का मुख सिद्ध हुआ।

कुछ देर बाद जनरल डायर सैनिकों सहित लौट गया और पीछे छोड़ गया इतिहास के सबसे काले और घिनौने कृत्य के निशान!

जलियाँवाला बाग–लाशों से पटा हुआ; रक्त से सनी मिट्टी वाला; जिंदगी के लिए लड़ते लोगों की कराहों से जर्जर। अंग्रेज सैनिकों की गोलियों ने न तो औरतों को छोड़ा था और न ही बच्चों को। खून से भीगे हुए शव, मांस के लोथड़े की तरह बिखरे बच्चे–इस वीभत्स दृश्य को देखकर कठोर हृदय वाले भी द्रवित हो गए।

इस नरसंहार में अनगिनत लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। यद्यपि अधिकारिक तौर पर मरने वालों की संख्या 379 बताई गई, परंतु पंडित मदनमोहन मालवीय के अनुसार यह संख्या 1400 से भी अधिक थी। इसके विपरीत अमृतसर के तत्कालीन सिविल सर्जन डॉ. स्मिथ के अनुसार मरने वालों की संख्या 1800 से अधिक थी। स्थिति की गंभीरता का पूर्व अनुमान लगाते हुए पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। दमनकारी नीतियों का सहारा लेते हुए सरकार ने पंजाब की निर्दोष स्त्रियों एवं पुरुषों पर अनेक अत्याचार किए।

'केसर-ए-हिंद' की वापसी

अमृतसर में घटित नरसंहार ने संपूर्ण देश को हिलाकर रख दिया। प्रख्यात नेताओं ने शीघ्र वक्तव्य जारी करते हुए इसे भारतीय इतिहास की सबसे निंदित और दुर्भाग्यपूर्ण घटना बताया तथा डायर को दंडित करने की माँग की। देश भर में प्रदर्शन एवं सभाएँ आयोजित कर रोष प्रकट किया गया।

भारतीय जनाक्रोश को देखते हुए सरकार ने विवश होकर जनरल डायर को निलंबित कर दिया। तत्पश्चात् एक आयोग की स्थापना कर उस पर मुकदमा चलाया गया। चूँकि कानूनी कार्यवाही इंग्लैंड में की जा रही थी, इसलिए न्याय की उम्मीद करना व्यर्थ था। जैसाकि सोचा जा रहा था, डायर को मुक्त कर दिया गया। सरकार के इस दोगले रवैये ने आग में घी डालने का काम किया। उनकी कुटिल नीतियों ने सरोजिनी नायडू को क्षुब्ध कर दिया था।

महान् कवि रवींद्रनाथ ठाकुर विरोधस्वरूप पहले ही 'सर' की उपाधि लौटा

चुके थे। उनका अनुसरण करते हुए शोकातुर सरोजिनी ने वर्ष 1908 में सामाजिक कार्यों के लिए मिली 'केसर-ए-हिंद' की उपाधि सरकार को लौटा दी।

वीरांगना की गर्जन

जलियाँवाला बाग में हुए नृंशस हत्याकांड से व्यथित सरोजिनी नायडू ने 3 जून, 1920 को खचाखच भरे लंदन के अल्बर्ट सभागार में बोलते हुए कहा था– 'मेरे देशवासियो! आज इस रात मैं आपको संबोधित नहीं कर रही हूँ, लेकिन अंग्रेज पुरुषों और महिलाओ! आज मैं अपने देश में विरोध करने वालों के रक्तरंजित अपराधों के कारण आप सबको न्यायालय के कटघरे में खड़ा करके आपसे बात कर रही हूँ। मैं उन अकल्पनीय अत्याचारों के ब्योरे में नहीं जाना चाहती, जो मेरे देश पर किए गए हैं और जो इतने अमानवीय हैं कि सहसा विश्वास नहीं होता कि ऐसा भी किया जा सकता है। मित्रो! श्री पटेल और श्री हॉर्नमेन ने उस भयंकर, अत्यंत भयंकर, तिगुने भयंकर जुल्म की प्रकृति मोटे तौर पर और सार रूप में आपके सामने रखी है, जो ब्रिटिश न्याय के नाम पर ढाया गया है, लेकिन मैं आपके सामने एक महिला के रूप में उस अन्याय के बारे में चर्चा करना चाहती हूँ, जो मेरी बहनों के प्रति किया गया है। अंग्रेज पुरुषो! आप जो अपनी वीरता पर गर्व करते हैं, अपनी स्त्रियों की प्रतिष्ठा और उनके सतीत्व को शाही खजाने से भी ज्यादा बेशकीमती समझते हैं, क्या आप शांत बैठे रहेंगे और घूँघट में लिपटी पंजाब की कुल-वधुओं की प्रतिष्ठा, उनके अपमान तथा उन पर ढाए गए जुल्मों का बदला लेने के लिए कुछ नहीं करेंगे?'

उनकी प्रभावशाली वक्तृता का उल्लेख करते हुए उनके भाई हरींद्रनाथ ने लिखा था, 'सरोजिनी को 'भारत कोकिला' कहा जाता था। मुझे पक्का विश्वास है कि यह पदवी उन्हें उनकी कविता के कारण नहीं, अपितु उनकी उस असाधारण वक्तृता के कारण दी गई थी, जो उनके भीतर से संगीत की धारा-सी फूटकर झरती थी, स्वर्णमंडित-रजत धारा-सी, जो विशुद्ध प्रेरणा के शिखरों से प्रपात-सी झरती थी। उनके भाषण राष्ट्रीय जन-जीवन पर जादू-सा प्रभाव डालते थे। यद्यपि वे स्वभाव से तथा काव्य और भाषण दोनों विधाओं में अभिव्यक्ति के मामले में गीतकार थीं, तथापि वह हमेशा ही गेयात्मकता के कोमल बिंदु पर नहीं थमी रहती थीं। ऐसे भी अवसर आए जब उनके पंछी का स्वर दावानल की चीत्कार में रूपांतरित हो जाता था और उनकी सतरंगी वक्तृता उस तीखी तलवार का रूप ले लेती थी, जिसमें निश्चय ही घातक प्रहार की क्षमता होती थी। सन् 1920 में

लज्जाजनक अमृतसर नरसंहार के पश्चात् मैंने सरोजिनी को खचाखच भरे लंदन के अल्बर्ट सभागार में बोलते हुए सुना था। वे घृणापूर्वक बोलीं, वह प्रतिशोध की भावना से अभिभूत होकर बोलीं, वे पूर्णतया प्रामाणिकता से बोलीं। भारत उनके माध्यम से मुखर हो उठा था। भारत, टूटा-फूटा भारत, जिसकी काया से रक्त रिस रहा था और जिसका भारी अपमान हुआ था और जिस समय दीर्घा में वह झुंड उठकर खड़ा हुआ, जिसे विशेष तौर पर सभा में व्यवधान डालने के लिए वहीं तैनात किया गया था और उसने सरोजिनी पर व्यंग्य करने की कोशिश की, तो वे चीख उठीं, 'जुबान बंद करो!' और परिणास्वरूप सभागार में पूर्ण शांति छा गई। बर्बर मुँह ऐसे खामोश हो गए, मानो किसी अपराजेय वीरांगना के वज्र ने उन्हें मूक कर दिया हो।'

मांटेग्यू की चुनौती

नरसंहार के मुद्दे को उठाने के साथ-साथ सरोजिनी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों पर किए जाने वाले अत्याचारों का विस्तृत ब्योरा अनेक पत्रों में प्रकाशित करवाया। सरकार की दमनकारी नीतियों और इसके परिणामस्वरूप भारत में बढ़ते विरोध से अंतरराष्ट्रीय समुदाय को अवगत करवाने में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन प्रयासों का ही परिणाम था कि उनके द्वारा लगाए गए आरोप ब्रिटिश संसद् में चर्चा के विषय बन गए, इससे विचलित होकर मांटेग्यू ने उन्हें आरोप साबित करने की चुनौती तक दे डाली, परंतु सरोजिनी नायडू कमर कस चुकी थीं। उन्होंने ऐसे दस्तावेजों का ढेर प्रस्तुत कर दिया, जिनमें उल्लेखित तथ्यों ने मांटेग्यू को मुँह तोड़ जवाब दे दिया। ❑

असहयोग आंदोलन

13

अब तक गांधीजी सरकार के समक्ष अपनी माँगों को शांतिपूर्वक ढंग से रखते आए थे। उन्हें विश्वास था कि देर-सवेर उन पर अवश्य विचार किया जाएगा। इसलिए प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने सरकार का भरपूर समर्थन भी किया था, लेकिन रोलेट एक्ट, जलियाँवाला बाग नरसंहार और हंटर कमेटी की एकपक्षीय जाँच ने उन्हें इस संबंध में पुनः सोचने के लिए विवश कर दिया।

गांधीजी आरंभ से ही हिंसा और उग्रवाद के प्रबल विरोधी थे, परंतु वे नहीं चाहते थे कि उनके नरम और सहयोगपूर्ण व्यवहार को उनकी कमजोरी समझा जाए। सत्याग्रह और अहिंसा के बल पर वे सरकार के समक्ष अपने पक्ष को मजबूती के साथ रखना चाहते थे। अतः सितंबर, 1920 में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसके अंतर्गत निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किए गए—

- ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई उपाधियाँ और सम्मान वापस लौटाना।
- सरकारी समारोहों का बहिष्कार।
- काउंसिल व चुनावों का बहिष्कार।
- शिक्षा संस्थानों का बहिष्कार।
- अदालतों का बहिष्कार।
- सेना में भर्ती होने से इनकार करना।
- विदेशी कपड़ों का बहिष्कार।
- शराब की दुकानों पर धरना देना।

आंदोलन को देश के कोने-कोने तक पहुँचाने के लिए गांधीजी ने विभिन्न स्थानों की यात्राएँ कर सभाएँ आयोजित कीं तथा लोगों को जागरूक किया।

सन् 1921 में सरोजिनी नायडू भी विदेशी दौरों को समाप्त कर भारत लौट आईं और आंदोलन से जुड़ गईं।

सभाओं में लोगों को संबोधित करते हुए वे गरजती थीं–'यह मातृभूमि हमारी जननी है और हम इसके वीर सपूत हैं, परंतु अंग्रेजों के अत्याचारों ने इसके आँचल को दागदार कर दिया है। पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी भारतमाता निरीह आँखों से हमारी ओर देख रही है। हमें प्राणों की आहुति देकर भी इसकी रक्षा करनी

है। मैं आह्वान करती हूँ कि आप लोग इस आंदोलन में सम्मिलित होकर अंग्रेजों को दिखा दें कि यदि भारतीय जाग उठे, तो उनका भारत में एक दिन भी रहना असंभव है।'

सरोजिनी के ज्वलंत भाषणों का प्रभाव इतना गहरा था कि देखते-ही-देखते आंदोलन ने व्यापक रूप ले लिया। युवक स्कूल-कॉलेजों का बहिष्कार करने लगे। वकीलों ने कोर्ट-कचहरी में जाना छोड़ दिया। सरकारी कर्मचारी भी आंदोलन में कूद पड़े। जगह-जगह पर विदेशी कपड़ों और वस्तुओं की होली जलाई गई। शराब की दुकानें बंद करवाने के लिए महिलाएँ उनके आगे धरने देने लगीं। आंदोलन का समर्थन करते हुए सफाई-कर्मचारियों, नौकरों, धोबियों आदि ने भी अंग्रेजों के घरों में कार्य करने से मना कर दिया।

शीघ्र ही सरकारी तंत्र पर आंदोलन का प्रभाव पड़ने लगा। सरकारी काम-काज ठप्प हो गए। ऐसे में हाथ-पर-हाथ रखकर बैठना सरकार को मुसीबत में डाल सकता था। अतः पुनः दमनकारी नीतियों का सहारा लेते हुए अनेक प्रमुख नेताओं को जेल में डाल दिया गया, लेकिन इस बार उनकी यह नीति असफल हो गई। लोग सहर्ष जेल जाने लगे। स्थिति इतनी बदतर हो गई कि जेलों में बंदियों को रखने का स्थान कम पड़ने लगा।

चौरीचौरा में हिंसा

हिंदू-मुसलिम सहित सभी धर्मों के लोग आंदोलन से जुड़े हुए थे। उनकी यह एकजुटता देखकर सरकार का हौसला पस्त हुआ जा रहा था, लेकिन ऐसे में घटित एक घटना ने सारा दृश्य बदल दिया।

4 जनवरी, 1922 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद के चौरीचौरा नामक एक छोटे-से गाँव में असहयोग आंदोलनकारियों का जुलूस निकाल रहा था। इसे पूरी तरह से अहिंसक और शांतिपूर्ण ढंग से संचालित किया जा रहा था, लेकिन कुछ अंग्रेज सिपाही आंदोलनकारियों पर छींटाकशी करने लगे। बार-बार अपशब्दों को सुनकर अंततः युवा आंदोलनकारी चिढ़ गए और उन्होंने उन्हें एक की दो सुना दी।

अंग्रेज भला अपमान कैसे सह सकते थे! वे जुलूस पर फायरिंग करने लगे।

इससे एक आंदोलनकारी वहीं ढेर हो गया। सहनशीलता की सीमा टूट चुकी थी, आंदोलनकारी भड़क उठे। दोनों पक्षों में कुछ देर तक संघर्ष चलता रहा। संख्या में कम होने के कारण सिपाहियों का पक्ष धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगा। अंततः जान बचाकर वे चौकी में जा छिपे, परंतु आंदोलनकारियों को शांत करना असंभव था। उन्होंने चौकी को आग लगा दी, जिसमें कुछ सिपाही जीवित ही जल गए।

इस घटना से गांधीजी बहुत आहत हुए। असहयोग आंदोलन में वे अहिंसा को आत्मा के समान मानते थे। उन्हें विश्वास था कि इस आत्मशक्ति के बल पर वे अंग्रेजों को झुकने के लिए विवश कर देंगे, परंतु जब आत्मा ही नष्ट हो जाए, तो सारा शक्तिपुंज नष्ट हो जाता है। उन्हें लगने लगा कि देश अहिंसक आंदोलन के लिए अभी परिपक्व नहीं हुआ है। अतः उन्होंने असहयोग आंदोलन समाप्त करने की घोषणा कर दी।

गिरफ्तारी और मुकदमा

आंदोलन जब चरम पर था और अपेक्षित परिणाम प्राप्त होने की संभावनाएँ प्रबल हो रही थीं, उस समय एक छोटी सी घटना के कारण आंदोलन को स्थगित करना कई नेताओं को अखर रहा था। इसके फलस्वरूप गांधीजी को अपने समर्थकों की कड़ी आलोचना का भी सामना करना पड़ा। चौरीचौरा में घटित हिंसात्मक घटना की जिम्मेदारी उन्होंने अपने सिर ले ली थी।

अंततः अवसर का लाभ उठाते हुए गोरी सरकार ने 10 मार्च, 1922 को उन्हें बंदी बना लिया।

न्यायिक प्रक्रिया आरंभ हुई। गांधीजी पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया था। सबूतों एवं तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करते हुए सरकारी वकील उनके लिए कठोर दंड की अपील कर रहे थे। इस संपूर्ण कार्यवाही को 'अदालती नाटक' कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि मुकदमे का परिणाम सभी को विदित था। सरकार किसी भी स्थिति में यह अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहती थी। इसकी आड़ में उसकी योजना गांधीजी को जेल भेजकर आंदोलनकारियों को कुचल देने

की थी, जिससे वे फिर सिर उठाने का साहस न कर सकें।

मुकदमे के दौरान सरोजिनी अदालत में उपस्थित थीं। उन्हें अपने निकट देखकर गांधीजी ने आश्वस्त होते हुए कहा था, ''तुम मेरे पास बैठोगी, जिससे अगर मैं टूट जाऊँ, तो तुम मुझे सँभाल सको?''

बाद में सरोजिनी नायडू ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए लिखा था'कानून की दृष्टि से वह एक बंदी और अपराधी थे, तथापि जिस समय महात्मा गांधी अपनी दुबली-पतली, गंभीर, अपराजेय काया लिए घुटनों तक की मोटी धोती पहने अपने निष्ठावान शिष्यों और साथी बंदी शंकरलाल बैंकर के साथ न्यायालय पहुँचे तो समूचा न्यायालय उनके प्रति अनायास सम्मान प्रकट करने के लिए खड़ा हो गया। जिस समय न्यायाधीश अपनी कुरसी पर बैठे, तो वहाँ उपस्थित भीड़ आशंका, स्वाभिमान और आशा की मिश्रित भावना से रोमांचित हो उठी। वह विलक्षण मुकदमा आगे बढ़ा और जैसे ही मैंने अपने प्रिय गुरु के होंठों से अमर शब्द सुने, त्यों ही मेरे विचार शताब्दियों पार एक भिन्न देश और एक भिन्न काल तक दौड़ गए। जब ठीक ऐसा ही नाटक अभिनीत हुआ था तथा एक अन्य दैवीय और भद्र पुरुष को साहसपूर्वक समानता का संदेश फैलाने के कारण क्रॉस पर लटकाया गया था। मैंने उस समय महसूस किया कि नाँद के पालने में पले ईसा ही इतिहास में एकमात्र ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिनकी तुलना भारतीय स्वतंत्रता के इस अपराजेय मसीहा से की जा सकती है, जो निस्सीम करुणा के साथ मानवता को प्यार करता था और उसके ही सुंदर शब्दों में कहा जाए, तो गरीब बनकर ही गरीबों तक पहुँचता था।'

शीघ्र ही नाटक का पटाक्षेप हुआ और गांधीजी को छह वर्ष की सजा सुना दी गई।

जेल जाते समय गांधीजी ने उनसे कहा था, ''मैं छह वर्ष के वनवास पर जा रहा हूँ। इसलिए भारत का भाग्य मैं तुम्हें सौंपता हूँ। अस्तित्व और आत्मसम्मान की इस लड़ाई में अब तुम राष्ट्र का नेतृत्व करो।''

क्षमा या सजा

इधर गांधीजी को पूना में स्थित यरवदा जेल में स्थानांतरित कर दिया गया, उधर मालाबार में हिंदू-मुसलिम दंगे भड़क उठे। विभिन्न अवसरों पर भाईचारे की अद्‌भुत मिसाल कायम करने वाले दो समुदाय परस्पर लड़ पड़े। तनाव और उपद्रव

के वातावरण में सकारात्मक कदम उठाने के बजाय सरकार उनका क्रूरतापूर्वक दमन करने लगी। उन्माद और आतंक से युक्त सैनिक कार्यवाही में अधिकारियों ने बर्बरता और नृशंसता का नंगा नाच किया। अनेक लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया, महिलाओं पर अत्याचार किए गए और बुजुर्गों को घसीटा गया।

यह क्रूरता देखकर सरोजिनी नायडू का द्रवित हृदय चीत्कार कर उठा और वे सार्वजनिक भाषणों द्वारा सरकार की जमकर आलोचना करने लगीं। विभिन्न समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके लेख मालाबार में अंग्रेज अधिकारियों द्वारा किए गए कुकृत्यों को उजागर करने लगे।

इससे विचलित होकर सरकार ने आदेश जारी कर दिया–'सरोजिनी नायडू लिखित रूप में क्षमा माँगें अन्यथा कठोर सजा भोगने के लिए तैयार रहे।'

धमकी भरे इस आदेश ने सरोजिनी को क्रोधित कर दिया। उन्होंने अपने पक्ष में महत्त्वपूर्ण तथ्य एकत्रित किए और प्रत्युत्तर देते हुए घोषणा की–'सरकार अपना आदेश वापस ले या धमकी के अनुसार कार्य करके दिखाए।'

सरोजिनी नायडू की इस चुनौती से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने टिप्पणी करते हुए कहा था–

'मेरे विचार से यह श्रीमती नायडू का सौभाग्य है, क्योंकि इससे उन्हें यह अवसर मिलेगा कि सरकार उनके वक्तव्य का खंडन करे। आशा है कि यह बात स्मरण रखी जाएगी कि सैनिक शासन के दौरान सरकारी कुकृत्यों के आरोपों का खंडन श्री मांटेग्यू ने किया था। उस समय भी सरोजिनी ने चुनौती को स्वीकार किया था और आरोपों को प्रमाणित करने के लिए कांग्रेस जाँच समिति के प्रतिवेदन से अध्याय-के-अध्याय पेश किए गए थे।

'यदि प्रमाण गलत रहे हों, तो यह कांग्रेस के जाँच कर्त्ताओं का दोष माना जाएगा, जिन्होंने इस मामले में उनका मार्गदर्शन किया। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि भारत कार्यालय उस प्रतिवेदन से पूरी तरह परिचित तक न था।

'इस अवसर पर मद्रास सरकार ने वस्तुतः सजा की धमकी दी है। मेरी इच्छा है कि वह अपने कथन को पूरा करे, तब भारत को अपनी एक असुरक्षित कवयित्री का वक्तव्य सुनने का अवसर मिलेगा। परिणाम यह होगा कि असहयोग के सिद्धांतों को सुनने के लिए न्यायालय में इतनी भीड़ उमड़ पड़ेगी कि या तो मुकदमा खुले मैदान में चलाया जाएगा या फिर जेल की चारदीवारी के भीतर। भारत में एक भी सभागार इतना बड़ा नहीं है, जिसमें वह भीड़ समा सके, जो ब्रिटिश पिंजरे में कैद बुलबुल का दर्शन करने को आतुर हो जाएगी।

'मुझे इस बात की खुशी है कि उन्होंने आरोपों को दोहराने में देर नहीं की। बहादुर केशव मेनन और दूसरे लोग उनके वक्तव्य का समर्थन करने के लिए आ गए। श्री प्राकशम् ने उस लड़के की तसवीर प्रकाशित की है, जिसकी बाँहें बर्बरतापूर्वक काट डाली गई थीं।

'सरोजिनी ने सरकार से कहा है कि वह उन पर मुकदमा चलाए या बिना शर्त क्षमा माँगे अथवा वैसा करने से पहले आरोपों की जाँच के लिए गैर-सरकारी लोगों का एक निष्पक्ष जाँच आयोग नियुक्त करे।

'मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि लॉर्ड विलिंगटन ने श्रीमती नायडू को निजी तौर पर यह तक नहीं लिखा कि क्या आपने ये आरोप आवेश के क्षणों में लगाए हैं और यदि ऐसा नहीं है, तो क्या आप उन्हें सिद्ध करने में सरकार की सहायता कर सकेंगी। क्या अंग्रेज भद्र पुरुष क्रोध के आवेश में वीरता की अपनी परंपराओं को भूल गए? क्या उन्हें भारत की योग्यतम बेटियों में से एक का सिर्फ इसलिए अपमान करना चाहिए कि उसने एक सार्वजनिक हित का प्रश्न उठाने का साहस दिखाया?

'मुझे आशा है कि लॉर्ड विलिंगटन सम्मानपूर्वक और खूबसूरत तरीके से अब भी अपनी भूल सुधार लेंगे। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इस प्रकार के गरिमामय कार्य से वे सरकार को उसकी खोई हुई गरिमा का एक अंश पुनः प्राप्त करा सकेंगे। इससे संघर्ष पर तो कोई अनुकूल अथवा प्रतिकूल प्रभाव पड़ने वाला नहीं है, लेकिन सरकार का एक गरिमामय कदम तपी हुई धरती पर वर्षा की एक बूँद की तरह काम कर सकता है।'

□

कांग्रेस में फूट

14

राजनीतिक सक्रियता एवं सामाजिक गतिविधियों में अधिकतर संलग्न रहने के कारण सरोजिनी नायडू का स्वास्थ्य खराब रहने लगा था। यद्यपि चिकित्सकों ने उन्हें आराम करने का परामर्श दिया था, तथापि सबकुछ भूलकर वे गांधीजी द्वारा सौंपे गए दायित्व का निष्ठापूर्वक निर्वाह करती रहीं। अस्वस्थता बढ़ी, तो पारिवारिक मित्र उनसे विश्राम के लिए आग्रह करने लगे। बार-बार जोर डाले जाने पर कुछ दिनों के लिए स्वयं को राजनीति से अलग करके वे श्रीलंका चली गईं, परंतु सार्वजनिक जीवन में पूर्ववत् सक्रिय रहीं। कोलंबो सहित अनेक स्थानों पर महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित व्याख्यान देकर उन्होंने लोगों का ध्यान भारत की ओर खींचा।

गांधीजी जेल में थे और सरोजिनी श्रीलंका की यात्रा पर थीं। ऐसी स्थिति में भारतीय राजनीति में एक नया घटनाक्रम जन्म लेने लगा। असहयोग आंदोलन की समाप्ति के साथ ही कांग्रेस में आंतरिक कलह उत्पन्न हो गई थी। उसके सदस्य दो गुटों में बँट चुके थे। इनमें से एक गुट विधानसभाओं में जाकर राजनीतिक लाभ प्राप्त करना चाहता था, जबकि दूसरा गुट गांधीवाद का समर्थन करते हुए पहले गुट की नीतियों का विरोध कर रहा था। सशक्त नेतृत्व के अभाव के कारण उनकी अंतर्कलह ने भयंकर रूप ले लिया। अंततः प्रथम गुट के नेता चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस से अलग होकर 'स्वराज' नामक पार्टी बना ली।

कांग्रेस-विभाजन ने सरोजिनी नायडू को उद्वेलित कर दिया। वे गांधीवादी गुट की समर्थक थीं। उनका मानना था कि राष्ट्र की आजादी के लिए प्रयासरत नेताओं को सरकार का अंग बनकर लाभ उठाने के बजाय आंदोलनों द्वारा सरकार का विरोध करना चाहिए।

कांग्रेस के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक बार कहा था, ''भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रयोजन स्वराज्य-सिद्धि अर्थात् भारत की जनता द्वारा वैधानिक और शांतिपूर्ण उपायों द्वारा पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति है। मैं जब कभी स्वतंत्रता के लिए किसी दास की करुण और संत्रस्त चीख-पुकार सुनती हूँ, तो विश्व-इतिहास में अपनी दासता की गहराई का बोध होने लगता है।

'स्वराज्य क्या है? स्वराज्य का अभिप्राय: पूर्ण राष्ट्रीय एकता में से उत्पन्न वह शक्ति और साहस है, जिसके बल पर हम शेष संसार के साथ समानता के स्तर पर स्वतंत्रता के दायित्व की सहकारिता में भागीदार होने की तैयारी प्रकट कर सकते हैं, लेकिन आप और मैं प्रतिदिन-प्रतिवर्ष आपस में संघर्ष करते जाते हैं। एक-दूसरे पर शंका करते हैं, द्वेष करते हैं और कटुता उत्पन्न कर लेते हैं।

'क्या ऐसी स्थिति में हम उस स्वतंत्रता की चर्चा कर सकते हैं, जो केवल एक अनुशासित राष्ट्रीयता का परिणाम होती है तथा जो व्यक्तिगत, वर्गीय या सांप्रदायिक हितों और लाभों तथा लोभों को सर्वनिष्ठ हितों के अधीन रखना चाहती है?

'आइए, हम उस महत्तर आदर्श की सिद्धि करें, जो विभाजित लोगों की आंतरिक दासता को सदा के लिए समाप्त कर देता है और जब वे संयुक्त होकर शेष जगत् में कहते हैं, हम सर्वनिष्ठ मानवीय दायित्वों के उस स्वतंत्र राष्ट्रकुल में आपके साथ संयुक्त हो गए हैं, जिसमें संयुक्त भारत आपके साथ खड़ा होने का साहस कर रहा है, वह एकाकी नहीं है। उसके चारों ओर वृत्त नहीं खिंचा है। वह उस स्वतंत्रता के कारण आपसे पृथक नहीं हो गया है, जिसकी आड़ कमजोर लोग लेते हैं, वरन् वह उस सर्वश्रेष्ठ स्वप्न में आपके साथ भागीदार है, जो मानवजाति की प्रगति की सर्वनिष्ठ देन द्वारा साकार हो सकता है।'

अफ्रीका की यात्रा

गांधीजी की अनुपस्थिति में पूर्वी अफ्रीकी भारतीय कांग्रेस की अध्यक्षता के लिए सरोजिनी नायडू को आमंत्रित किया गया। जनवरी, 1924 में वे दक्षिण अफ्रीका के लिए रवाना हुईं। इस व्यस्त कार्यक्रम में उन्होंने जोहांसबर्ग, डरबन, ट्रांसवाल, नेटाल, मोंबासा और रोडेशिया की यात्रा की।

वहाँ रहने वाले भारतीयों के बीच परस्पर सहयोग, विश्वास और एकजुटता पर जोर देते हुए उन्होंने अपने वक्तव्यों में कहा–'किसी देश में व्यक्ति का हित न पैमाने से नापा जा सकता है और न ही फीते से। प्रत्येक भारतीय का वास्तविक हित उसकी प्रतिष्ठा है। भारतीय राष्ट्र का वह आत्मसम्मान है, जिसे कीनिया के गोरे उपनिवेशवादियों ने चुनौती

दी है। समूची बसी हुई धरती पर एक भी दाँव नहीं लगा है। कोई भी व्यक्ति, चाहे अमीर हो या गरीब, शिक्षित हो या अशिक्षित, जब अपने देश से बाहर जाता है, तो वह अपने देश के हितों का दूत व संरक्षक होता है। हम कलंकित लोगों की तरह नहीं जी सकते। मैं भारत के लिए दक्षिण अफ्रीका की सहानुभूति प्राप्त करना और आपके सामने एक भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करना चाहती हूँ।'

अफ्रीका में सरोजिनी नायडू जहाँ-जहाँ गईं, उनका भव्य स्वागत हुआ। वहाँ वे इतनी लोकप्रिय हो गईं कि उनके दर्शन-मात्र के लिए लोगों की भीड़ उमड़ आती। सभास्थल तक पहुँचने का मार्ग फूलों से पट जाता। उनके भाषणों को सुनने के लिए भारतीय ही नहीं, अपितु स्थानीय निवासी भी आतुर रहते।

उन्हीं दिनों दक्षिण अफ्रीकी भारतीय सम्मेलन का चौथा अधिवेशन हुआ। सरोजिनी नायडू को सर्वसम्मति से अधिवेशन की अध्यक्षता सौंपी गई। अपने भाषण में उन्होंने श्वेत और काली जातियों के बीच स्वर्ण शृंखला बनने के लिए वहाँ रहने वाले भारतीयों का आह्वान किया। उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा कि 'अफ्रीका हमारे लिए क्या कर सकता है, यह सोचने के बजाय हमें इस बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए कि हम अफ्रीका के लिए क्या कर सकते हैं।'

उनके ओजस्वी भाषण से प्रभावित होकर जोहान्सबर्ग के एक समाचार पत्र ने टिप्पणी करते हुए लिखा था–'यह आश्चर्य की बात है कि अच्छी सड़कों और रहने के लिए अच्छे मकानों के बिना, हर प्रकार के स्तर और शक्ति से वंचित, प्रत्येक अवसर पर अपमानित और अछूत तथा अवांछनीय माने जाने पर भी सरोजिनी नायडू में स्वाभिमान की चिंगारी विद्यमान है।'

इसके विपरीत कुछ सरकारी पत्रों ने उन्हें श्रमिक-नेता घोषित करते हुए उन पर लोगों को भड़काने का आरोप लगाया, लेकिन उनके कथन सरोजिनी नायडू के बढ़ते प्रभाव को रोकने में असफल थे। वहाँ बसे भारतीयों के लिए उनका आगमन उत्सव से कम नहीं था।

सुनहरी यादें सँजोए 12 जून, 1924 को सरोजिनी भारत लौट आईं। अफ्रीका यात्रा के दौरान उन्होंने शांति, समता और सौहार्द्रता का जो संदेश दिया था, वह वर्षों तक याद रखा गया।

राजद्रोह का आरोप

अफ्रीका में सरोजिनी नायडू ने उपनिवेशों में अंग्रेजों की शासन-व्यवस्था एवं दमनकारी नीतियों की भरपूर आलोचना की। सार्वजनिक मंच पर दिए गए

भाषणों में उन्होंने उनकी धूर्तता, अन्याय और कुकृत्यों का विस्तृत उल्लेख किया। इससे वहाँ के ब्रिटिश अधिकारी विचलित हो उठे। उन्होंने इंग्लैंड की काउंसिल को एक पत्र लिखा, जिसमें भय प्रदर्शित करते हुए कहा गया था–'सरोजिनी नायडू के भड़काऊ भाषणों को सुनकर जनता उत्तेजित हो सकती है। यदि उन्हें रोका नहीं गया, तो यहाँ भी भारत जैसी आंदोलनकारी गतिविधियाँ जोर पकड़ लेंगी।'

शीघ्र कार्यवाही करते हुए 10 मार्च, 1924 को भारतमंत्री ने वायसराय को एक तार भेजा। इसमें सरोजिनी नायडू पर राजद्रोह का आरोप लगाते हुए उनके विरुद्ध कार्यवाही करने का आदेश दिया गया था, लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनके बढ़ते प्रभाव को देखते हुए यह अभियोग वापस ले लिया गया।

गांधीवाद का प्रचार

कारावास के दौरान गांधीजी का अधिकांश समय अफ्रीका का इतिहास लिखने या पुस्तकें पढ़ने में व्यतीत होता था। पढ़ने-लिखने में वे इतने तल्लीन हो जाते थे कि उन्हें खाने-पीने की कोई सुध नहीं रहती थी। इस अनियमितता के कारण उनके पेट में फोड़ा हो गया, जिसका पूना के एक अस्पताल में ऑपरेशन हुआ, परंतु उनके गिरते स्वास्थ्य से सरकार चिंतित हो उठी और 5 फरवरी, 1924 को बिना शर्त उन्हें मुक्त कर दिया गया। कस्तूरबा गांधी और सरोजिनी की अथक सेवा से वे स्वस्थ होने लगे।

गांधीजी सामाजिक कार्यों में पुनः जुट गए थे। उनकी प्रिय शिष्या सरोजिनी ने भी कमर कस ली थी। अप्रैल माह में उन्होंने सूरत का दौरा किया। हिंदू-मुसलिम आबादी वाला यह क्षेत्र भारत के प्रमुख वस्त्र-निर्माण केंद्रों में से एक था। अनुकूल भौगोलिक स्थिति देखते हुए अंग्रेजों ने यहाँ अनेक कारखाने स्थापित किए थे।

गांधीजी का सूरत आने का उद्देश्य हिंदू-मुसलिम एकता एवं भाईचारे को सुदृढ़ करना, विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करके खादी को

प्रोत्साहित करना तथा शराब पर प्रतिबंध लगाना था। उनके इन विचारों को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य सरोजिनी नायडू ने किया। उन्होंने घर-घर जाकर महिलाओं को जागरूक किया तथा शराब की दुकानों के आगे धरने दिए। खादी का प्रचार करते हुए लोगों को चरखा चलाने का प्रशिक्षण दिया। हिंदू-मुसलिम एकता को मजबूती प्रदान करते हुए उन्होंने अनेक ओजपूर्ण भाषण दिए।

यदि यह कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा कि सूरत में गांधीजी के आदर्शों को प्रचारित करने में सरोजिनी नायडू ने अहम भूमिका निभाई।

उनकी वक्तृत्व कला और नेतृत्त्व-क्षमता ने गांधीजी को अत्यंत प्रभावित किया। उनकी योग्यताओं का लोहा मानते हुए उन्होंने 'यंग इंडिया' के 17 जुलाई, 1924 के अंक में 'सरोजिनी द सिंगर' शीर्षक लिखा था–'यद्यपि मुझे विश्वास है कि मैं हिंदू-मुसलिम एकता की वृद्धि में अपना नम्र योगदान दे सकता हूँ, तथापि अनेक दृष्टियों से सरोजिनी यह कार्य मुझसे भी अधिक अच्छी तरह से कर सकती हैं। वे मुसलमानों को मेरी अपेक्षा कहीं अधिक घनिष्ठतापूर्वक जानती हैं। उनके घरों में आती-जाती हैं। इन योग्यताओं के साथ-साथ वे एक नारी हैं। यह उनकी सबसे बड़ी योग्यता है, जिसमें कोई पुरुष उनकी बराबरी नहीं कर सकता।'

❑

15 प्रथम महिला कांग्रेस अध्यक्ष

सरोजिनी नायडू का राजनीतिक व्यक्तित्व दिन-प्रतिदिन मजबूत होता जा रहा था। उनके व्याख्यानों एवं सामाजिक कार्यों ने उन्हें लोगों के बीच लोकप्रिय बना दिया था। वे जिधर जातीं, उन्हें सुनने के लिए लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती। उनके बढ़ते प्रभाव से तत्कालीन नेतागण परिचित थे। इसलिए सन् 1924 में बेलगाम में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन के लिए उनके नाम का समर्थन किया गया, लेकिन बाद में इस अधिवेशन की अध्यक्षता गांधीजी ने की थी।

कांग्रेस का अगला अधिवेशन कानपुर में होना था। इस बार गांधीजी ने इसकी अध्यक्षता के लिए सरोजिनी नायडू का नाम प्रस्तावित किया। इस संदर्भ में उनका कथन था–''वे कांग्रेस की ही नहीं, वरन् देश की राजनीति का एक मजबूत स्तंभ हैं। उनका व्यक्तित्व देश की सीमाओं को लाँघते हुए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँच चुका है। हमारा प्रभाव पुरुषों तक सीमित है, लेकिन वे उनके साथ-साथ उनके घर की महिलाओं में भी एक मित्र की तरह घुली-मिली हुई हैं। इस दृष्टि से वे हमसे भी एक कदम आगे हैं। मुझे विश्वास है कि उनकी अध्यक्षता में कांग्रेस एक नई परिपाटी को जन्म देगी, जिसमें महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार एवं सम्मान प्राप्त होगा। उनके नेतृत्व में पुराने विचारों का नई पद्धति से नवीकरण होगा।''

प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। इस प्रकार सरोजिनी नायडू कानपुर अधिवेशन की अध्यक्ष मनोनीत हुईं। कांग्रेस के इतिहास में वे प्रथम महिला थीं, जिन्हें अध्यक्ष बनने का गौरव प्राप्त हुआ। उनकी इस उपलब्धि ने राजनीति के क्षेत्र में भी नारी की सर्वोच्चता सिद्ध कर दी थी।

प्रथम अध्यक्षीय भाषण

निर्धारित दिन अधिवेशन आरंभ हुआ। अध्यक्ष होने के कारण सरोजिनी नायडू को अपने अध्यक्षीय भाषण में कांग्रेस की भावी नीतियों, कार्यों और योजनाओं की रूपरेखा स्पष्ट करनी थीं। नपे-तुले कदमों से वे मंच पर चढ़ीं, तालियों की गड़गड़ाहट से उनका स्वागत किया गया। तत्पश्चात् वे सभा को संबोधित करते हुए बोलीं–''मित्रो! एक महान् पद का भार और उच्च दायित्व मेरे अकुशल हाथों में

सौंपकर आपने मुझे जो असाधारण सम्मान प्रदान किया है, उसके लिए आपके प्रति आभार प्रकट करते समय मेरे मन में जो गहन और संश्लिष्ट भावना उमड़ रही है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए यदि मैं मनुष्य की भाषा के सभी कोष को टटोल डालूँ, तब भी मुझे आशंका है कि मैं पर्याप्त समर्थ और सुंदर शब्द नहीं खोज पाऊँगी।

''मुझे इस बात की पूरी चेतना है कि आपने मुझे अपना सर्वाधिक बहुमूल्य उपहार केवल उस सामान्य सेवा के बदले में ही नहीं दिया, जिसका सौभाग्य मुझे स्वदेश और विदेश में मिला है, वरन् भारतीय नारीत्व के प्रति उदारतापूर्ण सम्मान और राष्ट्र की लौकिक व आध्यात्मिक परिषदों में उसके विहित स्थान की निष्ठापूर्ण मान्यता के प्रतीक के रूप में भी भेंट किया है।

''आपने प्राचीन परंपरा का अनुसरण करते हुए भारतीय नारी को उसका सनातन पद पुनः प्रदान किया है, जो उसे हमारे देश की गाथा के एक सुखदतर युग में कभी प्राप्त था। वह अपने देश की पाकशाला की अग्नि, यज्ञशाला की अग्नि और मार्गदर्शक ज्योति की अग्नि की प्रतीक और संरक्षिका थी।

''मुझे विश्वास है कि आपने मुझे जो महान् दायित्व सौंपा है, उसकी पूर्ति के सिलसिले में मैं भी उस अमर आस्था की एक ज्योतिर्मय चिंगारी सुलगा सकूँगी, जिसने निर्वासित सीता की तपस्या का पथ प्रशस्त किया और जिसने सावित्री के अडिग चरणों को मृत्यु-दुर्ग के द्वार तक जाने की शक्ति प्रदान की। मैंने एक भारतीय माँ के नाते पालना झुलाया है और कोमल लोरियाँ गाई हैं, वहीं मैं अब स्वतंत्रता की ज्योति जगाऊँगी।''

अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे कहा था–'मेरा कार्यक्रम एक स्त्रियोचित अत्यंत मध्यम कोटि का घरेलू कार्यक्रम है। उसका प्रयोजन केवल यह है कि भारत माँ को उसका सही पद प्राप्त हो, अर्थात् वह अपने घर की सर्वोच्च स्वामिनी, अपने विराट् संसाधनों की एकमात्र संरक्षिका तथा अपनी सत्कार भावना की एकमात्र वितरक बने। अतः भारतमाता की एक आस्थावान बेटी के नाते मैं आने वाले वर्ष में अपनी माँ के घर को व्यवस्थित करने, विभिन्न संप्रदाय और धर्मों से निर्मित उसके संयुक्त पारिवारिक जीवन को चुनौती देने वाले त्रासदायी झगड़ों को निपटाने तथा उसकी दीनतम, समर्थतम एवं पोषित संतान, अतिथियों एवं उसके आँगन में आने वाले अपरिचितों के लिए समान रूप से उपयुक्त स्थान तथा प्रयोजन और मान्यता प्राप्त करने का नम्र, किंतु कठिन कार्य पूरा करने की चेष्टा करूँगी।'

सांप्रदायिकता के संदर्भ में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा–''अब मैं अत्यंत झिझक और खेदपूर्वक उस समस्या पर आती हूँ, जो हमारी समस्याओं में सबसे अधिक चिंताजनक और त्रासदायी है। मैंने अपना जीवन

हिंदू-मुसलिम एकता के स्वप्न की पूर्ति के निमित्त समर्पित कर दिया है। अत: मैं भारत के लोगों के बीच फूट और विभाजन की कल्पना कर खून के आँसू गिराए बिना नहीं रह सकती। वह मेरी आशा के मूल तंतु को ही भँग कर डालती है।

''यद्यपि मेरे मन में इस बात का पक्का विश्वास है कि सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत, चाहे संयुक्त निर्वाचकों के मध्य से लागू किया जाए अथवा पृथक निर्वाचकों के मध्य से, राष्ट्रीय एकता की संकल्पना को कुंठित करेगा, तथापि मैं यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हूँ कि आज हम बढ़ते हुए सांप्रदायिक द्वेष, शंका, अविश्वास, भय और घृणा के कारण जिस अत्यंत तनावपूर्ण, अंधकारमय और कटु वातावरण में जी रहे हैं, उसमें कोई संतोषजनक अथवा स्थायी सामंजस्य तब तक संभव नहीं है, जब तक कि संशयातीत देशभक्ति से उत्पन्न उन हिंदू और मुसलिम राजनीतिज्ञों के बीच उत्कटतम एवं धैर्यपूर्ण सहयोग उत्पन्न न हो, जिन पर कि इस विनाशकारी रोग का रामबाण इलाज खोजने की नाजुक और कठिन जिम्मेदारी है।

''मैं हिंदू भाइयों से प्रार्थना करती हूँ कि वे अपनी उस परंपरागत सहिष्णुता के उन्नत स्तर तक उठें, जो हमारे वैदिक धर्म की मूलभूत गरिमा है। यह समझने की चेष्टा करें कि इसलाम का बंधुत्व कितना सघन और दूरगामी यथार्थ है, जो सात करोड़ भारतीय मुसलमानों को एक सूत्र में पिरोता है तथा वे उन मुसीबतों में पूरा हिस्सा बँटाएँ, जो इसलामी देशों पर तेजी से टूट रही हैं और उन्हें विदेशी शक्तियों की सैनिक तानाशाही की एड़ियों के नीचे कुचले डाल रही हैं।

''जहाँ तक मुसलमानों का प्रश्न है, मैं अपने मुसलिम साथियों से निवेदन करूँगी कि वे सीरिया, मिस्र, इराक और अरब की मुसीबतों की चिंता में इतने व्यस्त न रहें कि अपनी उस मातृभूमि भारत के प्रति अपने सर्वोच्च कर्तव्य की चेतना ही उनके मस्तिष्क से समाप्त हो जाए, जिसे उनकी निष्ठा और वफादारी पर पहला अधिकार और दावा करने का हक है।

''यदि हिंदू और मुसलमान पारस्परिक सहनशीलता के दैवीय गुण का अभ्यास करें और एक-दूसरे के धर्म-कर्म-उपासना में विवेकहीन बाधाएँ डालने की आतंकपूर्ण कार्यवाहियों के बिना एक-दूसरे के जीवन को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करना सीख लें, यदि वे एक-दूसरे के धर्म के सौंदर्य और एक-दूसरे की सभ्यता के वैभव का सम्मान करना सीख लें, यदि दोनों संप्रदायों की महिलाएँ अपने समान भगनीत्व की घनिष्ठ मैत्री में संयुक्त होकर पारस्परिक माधुर्य और समन्वय के वातावरण में अपने बालकों का लालन-पालन करें, तो हम अपने मनोरथ की सिद्धि के अत्यंत समीप पहुँच जाएँ।''

राष्ट्र-हित में लोगों का आह्वान करते हुए उन्होंने तीव्र स्वर में उद्घोष किया–''स्वतंत्रता-संग्राम में भय अक्षम्य द्रोह और निराशा अक्षम्य पाप है। हार्दिक निवेदन भावना के साथ मैं दोनों हाथ उठाकर विनती करती हूँ कि आने वाले संकट की घड़ी में ईश्वर हमें पर्याप्त मात्रा में अडिग आस्था और अदम्य साहस प्रदान करे। हम जिस ईश्वर का नाम लेकर आज अपना कार्य आरंभ कर रहे हैं, वह हमें हमारी विजय के क्षणों में नम्र बनाए रखे।''

'सरोजिनी हमारी हैं'

अधिवेशन में दक्षिणी अफ्रीकी प्रतिनिधिमंडल के नेता ने सरोजिनी नायडू को उन्हीं का एक चित्र भेंट किया। सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था– ''दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों ने भारत को संसार का महानतम् जीवित व्यक्ति दिया है। महात्माजी हमारे हैं, सरोजिनी नायडू भी हमारी हैं। आपको हमें कम-से-कम एक या दो नेता देने होंगे, जो दक्षिण अफ्रीका जाएँ और हमारे संघर्ष में भाग लें। यदि हम भारत की महान् महिला को ले जाएँ, तो हम उनके पीछे उनका चित्र छोड़ जाएँगे जिससे कि आप उसको देखकर संतोष कर सकें। हम यह चित्र अपनी माँ और मौसी को दक्षिण अफ्रीकी भारतीयों के प्रेम के प्रतीक के रूप में भेंट करते हैं।''

कांग्रेस का विभाजन हो चुका था। इससे उसकी कमजोरी जगजाहिर हो चुकी थी। इसलिए एक वर्ष के कार्यकाल के दौरान सरोजिनी नायडू ने सरकार विरोधी गतिविधियों की अपेक्षा संगठनात्मक शक्ति में वृद्धि पर अधिक जोर दिया। उनका कथन था, 'कमजोर दल कभी देश का सुदृढ़ नेतृत्व नहीं कर सकता। जो अपनी अंतर्कलह एवं अस्थिरता को नियंत्रित नहीं कर सकता, वह सरकार की कुटिल नीतियों का विरोध किस प्रकार कर सकता है? उसकी आंतरिक मजबूती ही राष्ट्र की मजबूती का केंद्र बनेगी।'

❑

16 'मदर इंडिया' का जहर

जैसे-जैसे सरकार के अत्याचार बढ़ते जा रहे थे, वैसे-वैसे जनसाधारण में स्वतंत्रता प्राप्ति की ललक तीव्र होती जा रही थी। किसी ने उग्रवाद का समर्थन करते हुए हिंसात्मक गतिविधियों द्वारा सरकार का जीना मुश्किल कर दिया था, तो कोई अहिंसा एवं शांतिमय प्रदर्शनों द्वारा सार्वजनिक तौर पर सरकार को चुनौती दे रहा था। सरकार में सम्मिलित होकर उसकी जड़ें काटने वालों की भी कमी नहीं थी। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने स्तर पर प्रयासरत था।

भारत जैसे उपनिवेश को अंग्रेज किसी स्थिति में खोना नहीं चाहते थे। एक ओर यह उनके लिए वस्तु-उत्पादक का कार्य कर रहा था, वहीं दूसरी ओर इंग्लैंड में निर्मित वस्तुओं की खपत का भी सबसे बड़ा बाजार था। दोनों ही स्थितियों में वे भारत का आर्थिक शोषण कर रहे थे। प्राचीनकाल में सोने की चिड़िया के नाम से पहचाने जाना वाला भारत ब्रिटिश सरकार की कपटपूर्ण आर्थिक नीतियों के चलते दिन-प्रतिदिन निर्धन होता जा रहा था, परंतु लालचवश अंग्रेज इसे छोड़ने को तैयार नहीं थे। दमनकारी नीतियों एवं कानून-व्यवस्था की आड़ में वे भारत में होने वाली सरकार-विरोधी गतिविधियों को कुचल डालते थे। उन्होंने अहिंसात्मक आंदोलनों पर भी प्रतिबंध लगा दिया। साम, दाम, दंड, भेद किसी भी तरह से विरोधियों को धूल चटा देना चाहते थे, परंतु सरोजिनी नायडू, महात्मा गांधी तथा कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण नेताओं के प्रयासों के कारण भारत की आंतरिक दुर्दशा से अंतरराष्ट्रीय समुदाय अवगत हो चुका था। इससे विश्व भर में इंग्लैंड की स्थिति और समर्थन कमजोर पड़ गया। अनेक दूसरे राष्ट्र उनके विरुद्ध भारतीयों को सहायता देने का मन बना चुके थे।

स्थिति अधिक बिगड़ती, इससे पूर्व ही अंग्रेजों ने अपनी कुटिल बुद्धि से एक नया षड्यंत्र रच डाला। उन्होंने कैथरीन मेयो नामक एक लेखिका को भारतीय समाज के नकारात्मक पहलुओं पर पुस्तक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। इसके पीछे उनका मुख्य उद्देश्य विश्व-समुदाय के समक्ष भारत को बदनाम करना था।

कैथरीन द्वारा लिखित पुस्तक 'मदर इंडिया' के नाम से प्रकाशित हुई। उसमें भारत-संबंधित मनगढ़त तथ्यों का उल्लेख किया गया था। पुस्तक में कहा गया था,

'भारत में स्वतंत्रता की लड़ाई वस्तुत: उन समुदायों का षड्यंत्र है, जो सीधे-सादे भारतीय लोगों को बहका रहे हैं। वे नहीं चाहते कि देश उन्नति करे, साधारण जनता आत्मनिर्भर बने। सरकार की सुधारक और कल्याणकारी नीतियों के विरुद्ध लोगों को भड़काकर वे शासक और प्रजा के बीच दूरियाँ पैदा कर रहे हैं। इस बढ़ते तनाव के कारण सरकार को कुछ कठोर कदम उठाने के लिए विवश होना पड़ा। स्थिति इतनी बदतर है कि यदि भारत को स्वतंत्र छोड़ दिया जाए, तो यहाँ अव्यवस्था फैल जाएगी; हिंसा का जंगलराज स्थापित हो जाएगा। भारत को विश्व का गुरु कहा जाता है, लेकिन मुझे उसमें ऐसे कोई लक्षण दिखाई नहीं देते। आज भी लोग हमसे बहुत पिछड़े हुए और असभ्य हैं।'

कुछ ही दिनों में 'मदर इंडिया' विश्व भर में चर्चा का विषय बन गई। उसमें वर्णित 'जहर' ने अंतरराष्ट्रीय स्तर के बुद्धिजीवियों, विचारकों एवं राजनीतिज्ञों को भी भ्रमित कर दिया।

'मदर इंडिया' का प्रत्युत्तर

सन् 1928 में अखिल भारतीय महिला समिति की ओर से सरोजिनी नायडू ने होनोलुलू की यात्रा की। यात्रा से पूर्व गांधीजी ने उनसे कहा था, ''कैथरीन ने 'मदर इंडिया' द्वारा भारत की छवि को आघात पहुँचाया है, भारतीयों के अस्तित्व के संघर्ष को सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश की है। मैं चाहता हूँ कि होनोलुलू के बाद तुम अमेरिका और कनाडा जाकर भारत से संबंधित भ्रांतियों को दूर करने का प्रयास करो। कार्य कठिन है, परंतु मुझे विश्वास है कि तुम जैसी कवि-हृदय नारी के लिए यह संभव हो जाएगा। तुम्हारी वक्तृता पश्चिमी लोगों की आँखों पर पड़े भ्रम के पर्दे को हटा देगी।''

गांधीजी के विश्वास पर खरे उतरते हुए सरोजिनी ने पश्चिमी जगत के समक्ष भारतीय पक्ष को दृढ़ता के साथ रखा। अमेरिका में विद्वानों, लेखकों, बुद्धिजीवियों, विचारकों एवं राजनीतिज्ञों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था–'एक पुस्तक के आधार पर विश्व की अत्यंत प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का आकलन करना सबसे बड़ी मूर्खता है। जो लोग भारतीय समाज को असभ्य और जंगली लोगों का समुदाय कहते हैं, निस्संदेह वे इसकी आत्मा को नहीं पहचानते। वे यह भूल चुके हैं कि जब विश्व चलना सीख रहा था, तब उसे चलना सिखानेवाला भारत ही था। नालंदा विश्वविद्यालय से कौन परिचित नहीं है! इस स्रोत से ज्ञान की धारा बहकर संपूर्ण विश्व में फैली। भारत ने ही 'शून्य' देकर मृत विज्ञान को सजीव

किया। आज गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा भारत स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत है और यह केवल किसी समुदाय विशेष तक सीमित नहीं है, बल्कि भारत का हर नागरिक इसमें सम्मिलित है। यह राष्ट्र का सामूहिक संघर्ष है, जिसमें विभिन्न धर्मों और जातियों के लोग कंधे-से-कंधा मिलाकर उठ खड़े हुए हैं। यह निजी स्वार्थ की लड़ाई नहीं, वरन् राष्ट्र के गौरव, सम्मान और आत्मनिर्भरता का संघर्ष है। भारतीयों को इस बात की परवाह नहीं है कि विश्व उनके बारे में क्या सोचता है। वे लक्ष्य निर्धारित कर चुके हैं और उसे पाने के लिए बड़े-से-बड़ा बलिदान करने को तैयार हैं। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अत्याचारों का कुछ ही समय शेष है। शीघ्र ही वह दिन आएगा, जब भारत के मस्तक पर विजयश्री का गौरवमयी तिलक होगा और वह विश्व में सम्मान के साथ पहचाना जाएगा।'

सरोजिनी के वक्तव्यों, लेखों तथा सार्वजनिक मंच पर दिए गए भाषणों ने भारत-विरोधी सभी भ्रांतियों को धो डाला। प्रबुद्ध वर्ग ने अपने-अपने वक्तव्य जारी करते हुए उनके विचारों से सहमति जताई।

अमेरिका से भारत-समर्थक एक बुद्धिजीवी ने महात्मा गांधी को लिखा था, 'सरोजिनी नायडू की यात्रा आश्चर्यजनक रूप से सफल सिद्ध हुई है। उन्होंने सभी का दिल जीत लिया है। मैं सब जगह उनकी यात्रा के विषय में केवल प्रशंसा ही सुन रहा हूँ।'

कैथरीन की 'मदर इंडिया' को यह भारत की 'मदर इंडिया' का प्रत्युत्तर था।

'यायावर चारण'

सन् 1929 में सरोजिनी नायडू भारत लौट आईं। यद्यपि बुरी तरह से थका देने वाली इस यात्रा ने उन्हें कमजोर कर दिया, तथापि गांधीजी के सौंपे गए कार्य को उन्होंने बखूबी पूरा किया था।

उनके स्वागत-लेख में गांधीजी ने लिखा था–'पश्चिमी जगत् में अनेक विजय करने के पश्चात् 'यायावर चारण' घर लौट आई हैं। यह तो काल ही बताएगा कि उन्होंने वहाँ जो प्रभाव डाला है, वह कितना स्थायी है, तथापि यदि व्यक्तिगत अमेरिकी सूत्रों से आने वाली सूचनाओं को उसकी कसौटी मान लें, तो यह कहा जा सकता है कि सरोजिनी देवी के कार्य ने अमेरिकी मस्तिष्क पर बहुत गहरा प्रभाव अंकित किया है। अपनी दिग्विजय से वे ठीक उस समय लौटी हैं, जब उन्हें देश की असंख्य एवं जटिल समस्याओं के समाधान में योग देना है। ईश्वर करे कि जो सम्मोहिनी वे अमेरिकियों पर सफलतापूर्वक डाल सकीं, वह हम पर भी डालने में भी सफल रहें।'

❑

17

पूर्ण स्वराज्य की माँग

सन् 1928 में कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य का संकल्प लिया गया। गांधीजी ने देश-भर की यात्राएँ कर लोगों को स्वराज्य, सांप्रदायिक एकता, मद्य-निषेध, नारी-शक्ति जागरण और छुआछूत के निवारण के लिए जाग्रत् किया। उधर सरोजिनी नायडू पूर्वी अफ्रीकी भारतीय कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुए भारतीय विचारधारा का प्रचार-प्रसार कर रही थीं।

दिसंबर, 1929 में लाहौर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। गांधीजी ने इसकी अध्यक्षता के लिए जवाहरलाल नेहरू का नाम आगे कर दिया। अंततः वे कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए सरोजिनी भी भारत लौट आई थीं। वे कार्यसमिति की सदस्य मनोनीत हुईं।

नेहरूजी की इस उपलब्धि पर बधाई देते हुए सरोजिनी नायडू ने उन्हें एक पत्र लिखा था। इस पत्र के अनुसार–

'मेरे प्रिय जवाहर,

मुझे लगता है कि कल समूचे भारत में तुम्हारे पिता का हृदय सबसे अधिक गर्वीला और तुम्हारा सबसे भारी रहा होगा। मैं अपने उन शब्दों के बारे में सोचती हुई रात काफी देर तक जागती रही, जिसमें मैंने तुम्हारे बारे में प्रायः कहा है कि एक शानदार बलिदान तुम्हारी नियति है। मैंने तुम्हारा चेहरा देखा, तो मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे मैं अपनी आँखों से राज्याभिषेक और बलिदान दोनों एक साथ देख रही हूँ। तुम्हारे इस विराट् और भीषण दायित्व के निर्वाह में मेरी ओर से जिस प्रकार से तुम्हारी सहायता या सेवा संभव हो, उसके लिए बस तुम्हारे कहने भर की देर होगी, यह तो तुम जानते हो।

'यदि मैं कोई ठोस सहायता न भी दे पाई, तो मैं तुम्हें पूर्ण सद्भावना और स्नेह तो दे ही सकती हूँ। यद्यपि खलील जिब्रान ने कहा है कि 'एक व्यक्ति की कल्पनाएँ दूसरे व्यक्ति को पंख प्रदान नहीं कर सकतीं,' तथापि मुझे विश्वास है कि एक व्यक्ति की आत्मा की अजेय आस्था दूसरी आत्मा के भीतर वह उज्ज्वल ज्योति जगा सकती है, जिससे सारे संसार को प्रकाश मिले।

तुम्हारी स्नेहिल मित्र और बहन
सरोजिनी नायडू'

अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए 31 दिसंबर, 1929 को नेहरूजी ने तिरंगा फहराकर पूर्ण स्वराज्य की घोषणा कर दी। नववर्ष के प्रथम दिन प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया। गांधीजी ने पूर्ण स्वराज्य की प्रतिज्ञा लिखी, जिसे 26 जनवरी, 1930 को वसंत पंचमी के दिन प्रातः दस बजे देश भर में एक साथ ली जानी थी।

निर्धारित दिन और नियत समय पर देश-भर में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में लोगों द्वारा प्रतिज्ञा ली गई–'दासता सहना ईश्वर और देश के प्रति द्रोह है। साम्राज्य के अधीन देश का राजनीतिक एवं आर्थिक शोषण हुआ है, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक पतन हुआ है। इसलिए हम प्रण करते हैं कि जब तक पूर्ण स्वराज्य नहीं मिलेगा, तब तक हम इस अधम सत्ता का अहिंसक असहयोग करेंगे और कानून को सविनय भंग करेंगे।'

मुक्तिदूत को प्रणाम

ब्रिटिश सरकार ने भारत में 'नमक कानून' लागू कर दिया था, जिसके अंतर्गत भारतीय न तो नमक बना सकते थे और न बेच सकते थे। इसके अतिरिक्त नमक-उत्पादन को सरकारी नियंत्रण में लेकर उस पर भारी कर लगा दिया गया था। इस कानून ने गांधीजी को सत्याग्रह का नया मार्ग सुझाया। नमक लोगों की दैनिक जरूरत था। यह कानून तोड़कर पूर्ण स्वराज्य के लिए लोगों की आत्मा को जाग्रत् किया जा सकता था। अतः उन्होंने नमक बनाकर सत्याग्रह आंदोलन को राष्ट्रव्यापी बनाने का निश्चय कर लिया।

इसके लिए अरब सागर के दक्षिणी तट पर स्थित छोटे से गाँव दांडी का चयन किया गया। साबरमती से यह स्थान लगभग 241 मील दूर था। कार्यक्रम की रूपरेखा के अनुसार गांधीजी को अपने 79 सहयोगियों के साथ 12 मार्च, 1930 को दांडी की ओर कूच करना था तथा 6 अप्रैल का दिन नमक कानून तोड़ने के लिए निश्चित था।

परंतु वे सरकार को एक अवसर देना चाहते थे। इसलिए 2 मार्च, 1930 को उन्होंने वायसराय लॉर्ड इरविन को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने नमक कानून से असहमति व्यक्त करते हुए 11 मार्च तक उसे समाप्त करने का समय दिया था।

सरकार ने उनकी चेतावनी को नजरअंदाज कर दिया।

अंततः निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार 12 मार्च को गांधीजी ने दांडी की ओर प्रस्थान किया। यह यात्रा 'दांडी मार्च' कहलाई। चार जिलों एवं अड़तालीस

गाँवों से होकर गुजरने वाली इस यात्रा को लोगों का भरपूर सहयोग मिला। 79 अनुयायियों के साथ आरंभ की गई यह यात्रा दांडी तक पहुँचते-पहुँचते विशाल जुलूस का रूप ले चुकी थी। सरोजिनी नायडू भी महिलाओं का एक जत्था लेकर जुलूस में आ मिलीं।

6 अप्रैल, 1930 को गांधीजी ने समुद्र तट पर पहुँचकर स्नान किया, ईश्वर की प्रार्थना की और फिर तट से एक मुट्ठी नमक उठाकर नमक कानून तोड़ दिया। उन्हें ऐसा करते देख सरोजिनी नायडू भाव-विह्वल हो उठीं और जयघोष करते हुए बोलीं, ''मुक्तिदूत को प्रणाम!''

उनका उद्घोष सुनकर लोग उद्वेलित हो उठे और गांधीजी का अनुसरण करते हुए नमक कानून तोड़ने लगे। इसके बाद देश भर में नमक कानून तोड़ा जाने लगा।

सरोजिनी की गिरफ्तारी

सरकार के लिए यह खुली चुनौती थी। उसने महीने भर के अंदर हजारों सत्याग्रहियों को जेलों में ठूँस दिया। अनेक स्थानों पर फायरिंग की गई जिसमें हजारों लोग मारे गए। चूँकि इस आंदोलन का नेतृत्व गांधीजी कर रहे थे, अत: 5 मई को उन्हें गिरफ्तार करके पूना की यरवदा जेल में कैद कर लिया गया। कांग्रेस अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू और बाद में अस्थायी अध्यक्ष बने मोतीलाल नेहरू भी इलाहाबाद जेल में बंद थे।

छोटे-बड़े सभी नेताओं के जेल जाने के बाद आंदोलन की बागडोर सरोजिनी नायडू ने अपने हाथों में ले ली। महिलाओं का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा, ''अब वह समय आ गया है, जब स्त्रियाँ स्त्रीत्व का बहाना लेकर आंदोलन से अलग नहीं रह सकतीं। उन्हें देश के स्वाधीनता संघर्ष के खतरों और बलिदानों में अपने पुरुष सहयोगियों के साथ बराबर भाग लेना चाहिए।''

उनके आह्वान पर हजारों स्वयंसेवक एवं महिलाएँ आंदोलन में कूद पड़ीं। सरोजिनी ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था, 'अंग्रेज कितना भी अत्याचार क्यों न करें, आप लोग अहिंसा का मार्ग कदापि नहीं छोड़ेंगे।'

आंदोलनकारियों का नेतृत्व करने के कारण उन्हें भी बंदी बनाकर यरवदा जेल भेज दिया गया।

गोलमेज की विफलता

सरकार ने नमक आंदोलन कुचल दिया था, परंतु राष्ट्रीय नेताओं को अधिक दिनों तक बंदी बनाए रखना उसके लिए संभव नहीं था। भारत में ही नहीं, वरन् विदेशों में भी सरकार के इस कार्य की निंदा की जा रही थी। अत: वायसराय लॉर्ड इरविन ने बुद्धिमत्ता दिखाते हुए समझौते की पहल की और यरवदा जेल में एक बैठक बुलाई। इसमें गांधीजी, सरोजिनी नायडू, जवाहरलाल नेहरू, मोतीलाल नेहरू और कांग्रेस कार्यसमिति के दो सदस्य सम्मिलित हुए। लॉर्ड इरविन ने गांधीजी को चर्चा के लिए दिल्ली आने का निमंत्रण दिया। सभी सदस्यों ने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, परंतु बाद में यह सम्मेलन दिल्ली के बजाय लंदन में आयोजित किया गया, ताकि जेल में बंद होने के कारण गांधीजी और सरोजिनी नायडू इसमें भाग नहीं ले सकें।

सन् 1931 के प्रथम माह में गांधीजी और सरोजिनी नायडू को रिहा कर दिया गया। लॉर्ड इरविन ने पुन: समझौते का प्रस्ताव रखा।

29 अगस्त, 1931 को गोलमेज सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए वे दोनों लंदन रवाना हुए। सरकार आंदोलनकारियों के समक्ष झुकने को तैयार नहीं थी, जबकि गांधीजी और सरोजिनी नायडू देश के स्वाभिमान के साथ कोई समझौता नहीं कर सकते थे। परिणामस्वरूप सम्मेलन विफल हो गया। इसके बाद दक्षिण अफ्रीका जाने वाले प्रतिनिधिमंडल की सदस्य नियुक्त होकर सरोजिनी वहीं से दक्षिण अफ्रीका रवाना हो गईं।

❑

18

मुंबई में नजरबंद

जिस समय सरोजिनी नायडू दक्षिण अफ्रीका में भारतीय प्रतिनिधिमंडल का प्रतिनिधित्व कर रही थीं, उस दौरान सरकार ने गांधीजी सहित कांग्रेस कार्यसमिति के सभी सदस्यों को जेल में बंद कर दिया था। सूचना मिलते ही वे भारत लौट आईं और कांग्रेस के कार्यकारी अध्यक्ष का कार्यभार सँभाल लिया।

अनेक कार्यकर्ता बंदी बनाए जा चुके थे, सार्वजनिक प्रदर्शनों एवं धरनों पर सरकार की पैनी निगाहें थीं, संदेह के आधार पर किसी को भी पकड़कर जेल में ठूँस दिया जाता। ऐसी विषम परिस्थितियों में भावी योजनाओं को तैयार करने का दायित्व उन पर आ पड़ा।

सरोजिनी नायडू जितनी कुशल वक्ता थीं, उतनी ही कुशल नेतृत्वकर्ता भी थीं। अनेक अवसरों पर वे अपनी नेतृत्व-क्षमता का परिचय दे चुकी थीं। उन्होंने अकेले ही गोरी सरकार से लोहा लेने का निश्चय कर एक रणनीति बनाई। इसके अंतर्गत प्रत्येक प्रांत में एक अधिनायक नियुक्त किया गया, जिसका कार्य आंदोलन को गति प्रदान करना था। तत्पश्चात उन्होंने लोगों का आह्वान किया कि प्रदर्शन एवं धरने देते हुए वे 6 अप्रैल से 13 अप्रैल तक 'राष्ट्रीय सप्ताह' और डाकखानों का बहिष्कार करते हुए 21 अप्रैल से 27 अप्रैल तक 'डाक सप्ताह' मनाएँ।

अप्रैल माह के अंतिम सप्ताह में उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन की घोषणा कर दी। इसके लिए दिल्ली का चयन किया गया था। प्रांतीय कांग्रेस समितियों को इसकी सूचना प्रेषित कर दी गई।

सरोजिनी की राजनीतिक गतिविधियों से सरकार को भावी खतरे की गंध आने लगी थी। वह उन्हें गिरफ्तार करने के लिए बेचैन थी, परंतु पर्याप्त सबूतों के अभाव में उन पर हाथ डालना संभव नहीं था। इससे वह सहज ही देश भर में चर्चा का विषय बन जातीं।

अंग्रेज अधिकारी जानते थे कि कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए

वे दिल्ली अवश्य जाएँगी। अत: उनके मुंबई से बाहर जाने पर रोक लगा दी गई।

लेकिन सरोजिनी गोरी सरकार के आगे घुटने टेकने वालों में से नहीं थीं। वे जो कह देतीं, उसे करके ही दम लेती थीं। सरकारी आदेश की धज्जियाँ उड़ाते हुए 22 अप्रैल, 1932 को शाम 7 बजे वह दिल्ली के लिए रवाना हुईं। अंग्रेज अधिकारी इसी समय की प्रतीक्षा कर रहे थे। अगले स्टेशन पर उन्हें गिरफ्तार करके ऑर्थर रोड जेल भेज दिया गया। कुछ दिन बाद उन्हें वहाँ से यरवदा जेल में स्थानातंरित कर दिया गया।

'फूट डालो, राज करो'

'फूट डालो, राज करो' की नीति का अनुसरण करने वाली ब्रिटिश सरकार प्रारंभ से ही भारतीय समाज को धर्म एवं जाति के आधार पर विभक्त करने के लिए प्रयासरत थी। वह ऐसे अवसर की तलाश में रहती थी, जिससे सांप्रदायिक द्वेष पनपता हो। इसी तरह का प्रयास तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेमसे मैकडोनाल्ड ने किया। उन्होंने 'कम्युनल अवार्ड' नामक एक विवादास्पद चुनाव पद्धति की घोषणा कर दी। जातिगत मतदान प्रणाली पर आधारित इस पद्धति के अंतर्गत हरिजन केवल हरिजन को मत दे सकता था, उसे किसी अन्य जाति के उम्मीदवार को मत देने का अधिकार नहीं था। इस तरह ब्रिटिश सरकार देश को छोटे-छोटे वर्गों में बाँटने का षड्यंत्र रच रही थी।

8 अगस्त, 1932 को इस पद्धति की घोषणा कर दी गई। सरकार के इस सांप्रदायिक कदम से गांधीजी क्षुब्ध हो उठे और वे आमरण अनशन पर बैठ गए।

उपवास की लंबी अवधि के दौरान सरोजिनी निरंतर उनके साथ बनी रहीं। वे माता के समान उनकी सेवा-टहल करती थीं। गांधीजी के दर्शन के लिए आने वाले लोगों का जेल में ताँता लगा रहता था। ऐसे ही एक ईसाई दर्शक ने उनका समर्पण देखकर लिखा था–'मैं महान् कवयित्री और वक्ता सरोजिनी नायडू को देखकर अचरज में पड़ गया। वे भीतर से घूर रही थीं, मानो कोई विशाल पक्षी शिकारी से अपने छोटे बच्चों की रक्षा कर रहा हो। उनकी तुलना में जेल के पहरेदार अधिक सौम्य प्रतीत हो रहे थे। कुछ क्षणों तक ध्यान से देखने के बाद मुझे यह पता चला कि वे संतरी को यह निर्णय लेने में सहायता कर रही थीं कि असंख्य दर्शनार्थियों में से किन्हें उनके बंदी नेता के दर्शन के लिए बुलाया जा सकता है।'

शीघ्र ही डॉ. भीमराव अंबेडकर और गांधीजी के बीच 'पूना पेक्ट' समझौता हुआ, जिसके अंतर्गत हरिजनों के लिए आरक्षण की माँग स्वीकार कर ली गई। 26 सितंबर, 1932 को गांधीजी ने आमरण अनशन समाप्त कर दिया।

गांधीजी को पुनर्जीवन

छुआछूत के पाप के प्रायश्चित्त के लिए गांधीजी ने 8 मई, 1933 को 21 दिन का उपवास आरंभ किया। वे पहले ही बहुत कमजोर हो चुके थे, उनका स्वास्थ्य भी तेजी से खराब होता जा रहा था। सरकार उनकी संभावित मृत्यु को लेकर आश्वस्त हो चुकी थी। उनकी मौत के दोष से बचने के लिए सरकार ने उपवास के दूसरे दिन ही उन्हें कस्तूरबा गांधी और सरोजिनी नायडू के साथ रिहा कर दिया। वे तीनों पूना में लेडी ठाकरसी के घर आ गए।

गांधीजी मृतप्राय हो गए थे, उनका शारीरिक नियंत्रण समाप्त हो चुका था। ऐसे में उनके निकटतम मित्रों को बुला लिया गया। सभी को उनकी मृत्यु नजर आने लगी थी, लेकिन सरोजिनी को विश्वास था कि वे देश को बीच मँझधार में छोड़कर नहीं जा सकते। मन-ही-मन उन्होंने निश्चय कर लिया कि वे उन्हें स्वस्थ करके ही दम लेंगी। अतः वे उनकी सेवा में जुट गईं। उनके खान-पान और दवा पर वे विशेष ध्यान देती थीं। उनके अथक प्रयासों के फलस्वरूप गांधीजी में जिजीविषा पैदा होने लगी, धीरे-धीरे वे सँभलने लगे, फिर कुछ महीनों में ही वे भले-चंगे हो गए।

वे हँसते हुए अकसर सरोजिनी नायडू से कहा करते थे, ''तुम्हारे विश्वास और निस्वार्थ सेवा ने मुझे पुनः जीवित कर दिया।''

नेहरू को सीख

नए अधिनियम के अंतर्गत सरकार ने प्रांतों में मंत्रिमंडल बनाने की व्यवस्था कर दी, परंतु कुछ शक्तियाँ प्रांतीय गवर्नर के पास रखी गईं। गांधीजी इसके विरुद्ध थे, लेकिन जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस बहुमत वाले प्रांतों में मंत्रिमंडल बनाने के इच्छुक थे। चूँकि वे कांग्रेस के अध्यक्ष थे, इसलिए एक कार्यसमिति का गठन कर उन्होंने मंत्रिमंडल बनाने का निर्णय ले लिया। इससे गांधीजी व्यथित हो उठे। उनकी मनोदशा जानकर सरोजिनी ने नेहरूजी को समझाते हुए एक पत्र लिखा। 13 नवंबर, 1937 को लिखे गए इस पत्र के अनुसार—

''मेरे परम प्रिय मित्र जवाहर!

''यह पत्र मैं बेबेल की मीनार के आधुनिक संस्करण से लिख रही हूँ। 'बौना आदमी' (गांधीजी) निरपेक्ष भाव से बैठा हुआ पालक और उबली हुई गाजर खा रहा है, उधर जगत् उसके इर्द-गिर्द उतार-चढ़ाव के साथ बहता जा रहा है।

विधान और उसके साथी उसके स्वास्थ्य के प्रति उनकी हठपूर्ण लापरवाही के कारण निराश हैं। वह सचमुच बीमार है। उसकी भुरभुरी हड्डियों और पतले होते जाते रक्त में ही रोग नहीं है, उसकी आत्मा का अंतरतम् अस्वस्थ है। वह अपने युग का सबसे अकेला और त्रस्त व्यक्ति है। भारत का भाग्यविधाता अपने ही नाश के कगार पर खड़ा हुआ है। तुम भारत के दूसरे भाग्यविधाता हो। तुम्हें मैं जन्मदिन की बधाई भेज रही हूँ। आने वाले वर्ष में तुम्हारे लिए क्या कामना करूँ? सुख, शांति, विजय– मनुष्यों को ये वस्तुएँ अत्यंत प्रिय होती हैं, लेकिन तुम्हारे लिए इनका स्थान गौण है, लगभग प्रासंगिक।

''मेरे प्रिय! मैं तुम्हारे लिए अटूट आस्था और तुम्हारे उस उत्पीड़न भरे मार्ग में उत्कट साहस की कामना करती हूँ, जिस पर स्वतंत्रता का अनुसरण करने वाले सभी साधकों को अग्रसर होना पड़ता और जिसे वे अपने जीवन की अपेक्षा अधिक बहुमूल्य मानते हैं, व्यक्तिगत स्वतंत्रता नहीं, वरन् समूचे राष्ट्र की बंधन मुक्ति! उस दुर्गम और जोखिम भरे मार्ग पर सीना तानकर चलते चले जाओ।

''यदि तुम्हारे भाग्य में दर्द, अकेलापन और दुःख बदे हों, तो याद रखना कि तुम्हारे समस्त बलिदानों की चरम परिणति स्वतंत्रता में होगी, परंतु तुम अपने आपको अकेला नहीं पाओगे।

तुम्हारी सरोजिनी''

❑

19 विश्वभारती की आचार्या

अमर-कृति 'गीतांजलि' के रचयिता रवींद्रनाथ ठाकुर और भारत कोकिला सरोजिनी नायडू में प्रगाढ़ मित्रता थी। जब भी वे कलकत्ता जातीं, उनसे अवश्य भेंट करतीं। रवींद्रनाथ द्वारा लिखित गीत उन्हें इतने प्रिय थे कि अकसर उन्हें सुना करती थीं।

जिन दिनों गीतांजलि प्रकाशित हुई, उन दिनों सरोजिनी इंग्लैंड में थीं। गीतांजलि पढ़कर वे मंत्रमुग्ध होकर कह उठीं, ''उसने पाश्चात्य जीवन के क्षितिज पर अपनी ख्याति इंद्रधनुष की भाँति फैला दी है।''

वर्ष 1933 में उन्होंने 'रवींद्रनाथ ठाकुर सप्ताह' का आयोजन किया था। उसकी सफलता से प्रभावित होकर रवींद्रनाथ ने उन्हें लिखा था–'तुम महान् हो! तुमने मुझे इतनी सहायता पहुँचाई है, जितनी कोई दूसरा नहीं पहुँचा सकता, लेकिन मेरे लिए इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मैं तुम्हें जान सका। तुम्हारी आंतरिक उपलब्धियाँ आश्चर्यजनक हैं, जिनके कारण मुझे तुमसे ईर्ष्या हो सकती थी, लेकिन मैं तुमसे स्नेह करता हूँ और स्नेह ने मुझे तुमसे ईर्ष्या करने से बचा लिया है। मुझे भय है कि मेरा यह कथन तुम्हें बहुत भावुकतापूर्ण लगेगा, लेकिन मुझे उसकी चिंता नहीं है। मैं अपने आपको तुम्हारे मनोरंजक परिहास का भोजन बना रहा हूँ, क्योंकि मुझे मालूम है कि यह मेरे प्रति कठोर नहीं हो सकता।'

प्रत्युत्तर में सरोजिनी ने लिखा था–'आपने जिन सर्वाधिक सम्मोहनकारी वस्तुओं का सृजन किया है, उनमें वह गरिमामय और कोमल पत्र भी है, जो आपने मुझे उस 'मनोरंजक परिहास' के लिए ही नहीं, जिसका कि आपने उल्लेख किया है; वरन् आनंद के आँसू गिराने के लिए भी उद्वेलित कर दिया। आप सरीखे दार्शनिक को यह भी बोध होता होगा कि यह महानता कोई आत्मगत या व्यक्तिगत महानता मात्र नहीं है, वरन् यह तो स्मृति, अनुभव तथा ज्ञान है, जिसे मैं मानव संघर्ष की, महासागर जैसी अतल गहराइयों में बार-बार उतरकर उज्ज्वल कोष के समान निकाल लाती हूँ।'

रवींद्रनाथ ने शांतिनिकेतन में 'विश्वभारती' विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। आगे चलकर सरोजिनी को इसकी आचार्या बनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

राष्ट्रकवि को श्रद्धांजलि

जुलाई 1941 तक रवींद्रनाथ की हालत बहुत नाजुक हो गई थी। उनका अधिकाँश समय बिस्तर पर गुजर रहा था। 25 जुलाई, 1941 को अचानक तबीयत खराब होने पर उन्हें कलकत्ता लाया गया। स्वास्थ्य परीक्षण के बाद 30 जुलाई, 1941 को उनका ऑपरेशन भी किया गया, परंतु फिर भी उनके स्वास्थ्य में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ, उनकी हालत और नाजुक हो गई।

रवीन्द्रनाथ को हर प्रकार की उत्तम सुविधा दी जा रही थी, लेकिन उनका तेज निरंतर क्षीण होता जा रहा था। डॉक्टर प्रयासरत थे, परंतु विधाता को कुछ और ही मंजूर था। अंततः 27 अगस्त, 1941 को उन्होंने सदा के लिए आँखें मूँद लीं। देश-भर में शोक की लहर दौड़ गई। प्रिय मित्र की विदाई से व्यथित होकर सरोजिनी ने कहा था, ''भारत के साहित्य-मंडल पर जगमगाता हुआ सूर्य अस्त हो गया। निस्संदेह विश्वभारती उनके सिद्धांतों एवं आदर्शों को लोगों तक पहुँचाता रहेगा, लेकिन आने वाली पीढ़ियाँ उनकी कमी को हमेशा महसूस करती रहेंगी।''

क्रिप्स मिशन की विफलता

द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ चुका था। ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने भारत को अपनी ओर से इस युद्ध में सम्मिलित कर लिया। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस व अन्य दलों के नेताओं से पूछे बिना यह निर्णय लिया था तथा भारत की धन-संपत्ति युद्ध में फूँक रही थी। सैकड़ों नौजवानों को जबरदस्ती सेना में भरती किया जा रहा था। कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की इस कुटिलता का कड़ा विरोध किया और नौ प्रांतों के उसके मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया। सरकार पर संकट के बादल मँडराने लगे। अतः कांग्रेस को मनाने के लिए उसने मार्च 1942 में 'स्टेफर्ड क्रिप्स' की अध्यक्षता में एक कमीशन भेजा, जिसका उद्देश्य आंतरिक सरकार की स्थापना की संभावनाओं को खोजना था।

सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में कांग्रेसी सदस्यों का एक दल क्रिप्स से मिला। वे देश की आजादी का ठोस आश्वासन चाहते थे, लेकिन क्रिप्स द्वारा टाल-मटोल करने पर यह वार्ता बिना किसी नतीजे के समाप्त हो गई।

'अंग्रेजो, भारत छोड़ो'

8 अगस्त, 1942 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के बंबई सत्र में गांधीजी ने 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसे सर्वसम्मति से पारित कर दिया गया। आगे बंबई के गोवालिया टैंक मैदान (वर्तमान में अगस्त क्रांति मैदान) में गांधीजी ने देश की जनता को संबोधित करते हुए 'करो या मरो' का नारा दिया।

अगले ही दिन गांधीजी, कस्तूरबा, मीरा बेन, महादेव देसाई तथा सरोजिनी नायडू को पूना के आगा खाँ महल में नजरबंद कर दिया गया। जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा अन्य कांग्रेसी नेता अहमदनगर किले में बंदी थे। देश-भर में गिरफ्तारियों का दौर चल पड़ा, अनेक लोगों को जेलों में डाल दिया गया। इस बार सरकार किसी भी कीमत पर झुकने को तैयार नहीं थी।

जेल में ही कस्तूरबा गांधी और महादेव देसाई ने संसार से विदा ले ली। इन आघातों से बुरी तरह टूट चुके गांधीजी को अंततः सरोजिनी नायडू ने सँभाला।

आंदोलन का नेतृत्व

जेल-प्रवास के दौरान सरोजिनी नायडू को ज्वर ने घेर लिया। जैसे-जैसे दिन बीतते गए, उनका बुखार बढ़ता गया। उनकी बिगड़ती दशा देखकर ब्रिटिश सरकार घबरा उठी।

नेताओं को बंदी बनाए जाने से जनता पहले ही खार खाए बैठी थी। ऐसी स्थिति में सरोजिनी के जेल में मरने से देश में क्रोध का ज्वालामुखी फूट सकता था। इस आशंका को ध्यान में रखते हुए 21 मार्च, 1943 को सरकार ने उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया। उस समय तक उनका स्वास्थ्य इतना खराब हो चुका था कि उन्हें स्ट्रेचर पर जेल से बाहर लाया गया।

लेकिन सरोजिनी ने जेल से बाहर कदम रखते ही 'भारत छोड़ो' आंदोलन की बागडोर सँभाल ली। बीमारी की परवाह न करते हुए उन्होंने 9 अगस्त, 1943 को एक वक्तव्य जारी किया-'महात्मा गांधी और कार्यसमिति की गिरफ्तारी के बाद कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के बीच कुछ वैचारिक भ्रांति तथा मत-मतांतर उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि वे एक निश्चित कार्यक्रम और मान्य नेतृत्व से वंचित हो गए हैं। इस बारे में जो संदेह लोगों के मन हों, मैं उन्हें यह बताकर दूर

करना चाहती हूँ कि कार्यसमिति अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने कांग्रेस के किसी व्यक्ति अथवा समूह को किसी प्रकार की सत्ता हस्तांतरित नहीं की है। मैं अभी तक इतनी अधिक अस्वस्थ हूँ कि राहत के कल्याणकारी कार्यों में भाग नहीं ले सकती।'

जून, 1945 तक सरकार ने एक-एक कर सभी नेताओं को रिहा कर दिया।

पृथक देश की माँग

मुसलमानों के पक्ष को सुदृढ़ करने तथा उनके हितों के लिए वर्ष 1906 में मुसलिम लीग की स्थापना की गई थी। बाद में अनेक मुसलमान नेता कांग्रेस छोड़कर इसमें सम्मिलित हो गए। इसका लाभ उठाते हुए सरकार उन्हें प्रोत्साहित करने लगी। उन्हें सरकारी नौकरियों एवं उपाधियों का लालच दिया गया, उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध करवाए गए। इसके फलस्वरूप हिंदू-मुसलमानों के बीच परस्पर दूरी बढ़ती गई। शनैः-शनैः उनके बीच की खाई इतनी बढ़ गई कि दोनों समुदाय एक-दूसरे के कट्टर शत्रु हो गए।

सरोजिनी नायडू जीवन भर हिंदुओं व मुसलमानों को एकता और सद्भावना का संदेश देती आई थीं। अनेक अवसरों पर उन्होंने कांग्रेस के साथ-साथ मुसलिम लीग का भी प्रतिनिधित्व किया था। उनके लिए दोनों धर्म एक समान थे। यही कारण था कि गांधीजी के साथ-साथ जिन्ना के लिए भी उनके हृदय में आदर और सम्मान का भाव था। प्रारंभ में जिन्ना हिंदू-मुसलिम एकता के पक्षधर थे, परंतु सरकार की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के चलते शीघ्र ही उनकी खुली मानसिकता कट्टरवाद में परिवर्तित हो गई।

द्वितीय महायुद्ध के बाद आंतरिक कलह इतनी बढ़ गई कि जिन्ना के नेतृत्व में मुसलिम लीग पृथक देश की माँग करने लगी।

❑

20

विभाजन का दंश

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद गुलामी की बेड़ियों में छटपटाते भारत की मेहनत रंग लाई। देश पर सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले भारतीयों के समक्ष ब्रिटिश सरकार ने घुटने टेक दिए। अंततः 15 अगस्त, 1947 को भारत की पवित्र धरती पर तिरंगा फहराने लगा, लेकिन पाकिस्तान के रूप में उन्हें स्वतंत्रता की भारी कीमत चुकानी पड़ी। मुसलिम लीग की अनुचित माँग और अंग्रेजों की कूटनीति के चलते देश को विभाजन का दंश झेलना पड़ा।

सरोजिनी नायडू विभाजन के विरुद्ध थीं। उनका मत था कि हिंदू-मुसलिम का विवाद बातचीत द्वारा सुलझाया जाना चाहिए। पृथक राष्ट्र का निर्माण इसका हल नहीं है। इससे दोनों देश शक्तिहीन होकर पंगु हो जाएँगे तथा विदेशी ताकतों को पुनः उन पर शासन करने का अवसर मिल जाएगा। पूर्व में की गई गलतियों से सबक लेते हुए दोनों समुदायों को आपसी सहयोग और सामंजस्य द्वारा राष्ट्र को सुदृढ़ करना चाहिए, लेकिन धर्मांधता और कट्टरवाद के अनुयायियों ने उनकी बात अनसुनी कर दी।

जिस दिन पाकिस्तान की घोषणा की गई, उस दिन सरोजिनी ने मन की व्यथा व्यक्त करते हुए कहा था, ''भारत का बँटवारा केवल जमीन के कुछ हिस्सों का बँटवारा नहीं है, बल्कि उन लोगों की भावनाओं, विचारों, प्रयत्नों एवं बलिदानों का भी बँटवारा है, जिन्होंने मातृभूमि को स्वतंत्र करवाने के लिए संयुक्त रूप से अपना जीवन होम कर दिया। देश की एकता और अखंडता के लिए शहीद हुए सपूतों का विभाजन के रूप में किया गया अपमान हमें याद रहेगा। धर्मांधता में डूबे लोग, चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान, यह बात भली-भाँति जान लें कि स्वार्थ को सर्वोपरि रखते हुए वे देश को तो खंडित कर सकते हैं, लेकिन परस्पर घुली-मिली हिंदू-मुसलिम संस्कृतियों तथा उनके बीच सदियों से बने हुए स्नेह-संबंधों को नहीं बाँट सकते। राष्ट्र-विभाजन के बाद भी भारत हमेशा अखंड रहेगा।''

प्रथम महिला गवर्नर

स्वतंत्र भारत की बागडोर कांग्रेस के हाथों में थी। गांधीजी की दृष्टि में पंडित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमंत्री पद के लिए योग्य पात्र थे। कांग्रेसी नेताओं का

भी उन्हें भरपूर समर्थन प्राप्त था। इसलिए उनके नेतृत्व में स्वतंत्र भारत के प्रथम मंत्रिमंडल का गठन हुआ। सरोजिनी नायडू देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश की राज्यपाल नियुक्त हुईं। इसके साथ ही उन्हें स्वतंत्र भारत की प्रथम महिला गवर्नर बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

15 अगस्त, 1947 को राज्यपाल के शपथ ग्रहण समारोह का आयोजन किया गया। इस राष्ट्रीय उत्सव पर हिंदू, सिख, बौद्ध, मुसलिम, ईसाई एवं जैन पद्धति से प्रार्थनाएँ की गईं। सरोजिनी नायडू की इच्छा जानते हुए आयोजन में सम्मिलित होने वाले अतिथिगण भारतीय परंपरागत पोशाकों में सज-धजकर आए थे।

शपथ लेने के बाद उन्होंने मर्मस्पर्शी भाषण देते हुए कहा था–'हे संसार के स्वतंत्र देशो! अपनी स्वतंत्रता के दिन आज हम भविष्य में तुम्हारी स्वतंत्रता के लिए प्रार्थना करते हैं। हमारा संघर्ष ऐतिहासिक रहा है। यह कई वर्षों तक चला और इसमें अनेक प्राणों का बलिदान हुआ। यह एक संघर्ष रहा है, नाटकीय संघर्ष! यह वीरों का एक ऐसा संघर्ष रहा है, जो अपने देश के कोटि-कोटि जन के बीच अनाम है। यह उन महिलाओं का संघर्ष रहा है, जो स्वयं वह शक्ति बन गई थीं, जिसकी वे उपासना करती हैं। यह युवाओं का संघर्ष रहा है, जो अचानक शक्ति में रूपांतरित हो गया। यह युवकों, वृद्धों, धनियों, निर्धनों, शिक्षितों, अशिक्षितों, रोगियों, अछूतों, कोढ़ियों और संतों का संघर्ष रहा है। हम अपने कष्टों की कुठाली में से आज नए सिरे से जन्म लेकर उठे हैं।

विश्व के राष्ट्रो! मैं भारत के नाम पर तुम्हारा अभिनंदन करती हूँ, अपनी माँ के नाम पर, अपनी उस माँ के, जिसके घर पर हिम की छत है, जिसकी दीवारें सजीव समुद्रों की हैं, जिसके दरवाजे तुम्हारे लिए सदैव खुले हैं। मैं इस भारत की स्वतंत्रता समस्त संसार के लिए प्रदान करती हूँ, यह अतीत में कभी नहीं मरा, यह भविष्य में कभी नष्ट नहीं होगा और संसार को अंततः शांति की दिशा में ले जाएगा।'

अपने कार्यकाल के दौरान सरोजिनी नायडू ने न केवल महिलाओं के उत्थान से संबंधित कार्यक्रमों पर जोर देते हुए उन्हें प्रोत्साहित किया, बल्कि शिक्षा

को बढ़ावा देने के लिए अनेक महिला-शिक्षण संस्थाओं की स्थापना में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

गांधीजी की हत्या

'हमारे जीवन का उजाला छिन गया है, चारों ओर अंधकार है। क्या कहूँ और कैसे कहूँ–कुछ नहीं सूझता। हमारे प्यारे नेता बापू राष्ट्रपिता हमें छोड़ गए।'

रेडियो पर प्रसारित पंडित नेहरू के इस मर्माहत संदेश को सुनकर संपूर्ण देश स्तब्ध रह गया।

30 जनवरी, 1948 को सायं जब महात्मा गांधी प्रार्थना-सभा की ओर जा रहे थे, तब नाथूराम गोडसे नामक हत्यारे ने गोलियाँ दागकर उनकी जान ले ली। आग की तरह फैली इस खबर ने सबको व्यथित कर दिया।

यह समाचार सुनकर सरोजिनी मूर्च्छित-सी हो गईं। जीवन भर अहिंसा और सौहार्द्रता का संदेश देने वाले बापू की हत्या! अहिंसा का हिंसा से दमन! सत्य पर असत्य की विजय! हाय रे विधाता! यह कैसा न्याय है, जिसमें एक पवित्रात्मा को अपना बलिदान देना पड़ा? क्या इसी दिन के लिए उन्होंने देश को गुलामी से मुक्त करवाने का संकल्प लिया था? राष्ट्र के लिए उनके समर्पण, निष्ठा और बलिदानों का क्या यही प्रतिकार था?

उनकी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा, तभी सूचना मिली कि अगले दिन प्रात:काल बापू की अंतिम यात्रा निकाली जाएगी। उनके दर्शन की अभिलाषा लिये हुए वे दिल्ली जाने की तैयारी करने लगीं।

'लघु-मानव'

राजघाट पर राष्ट्रपिता की पार्थिव देह धू-धू करके जल रही थी। चिता से निकलने वाली लपटें आकाश की ओर मुख करके जीवन के अंतिम चरण को पूर्ण करने लगीं। निकट खड़ी सरोजिनी एकटक नजरों से उसी ओर निहार रही थीं। पिता, माता, भाई, गुरु जीवन-पथ पर एक-एक कर सबने साथ छोड़ दिया था। आज बापू ने भी उनसे विदा ले ली थी।

एक बार गांधीजी ने सरोजिनी से कहा था, ''मैं जानता हूँ कि अहिंसात्मक संघर्ष शुरू करके मैं पागलों का-सा साहस कर रहा हूँ, वैसा ही जोखिम उठा रहा हूँ,

परंतु जोखिम उठाए बिना और अकसर भारी-से-भारी जोखिम उठाए बिना सत्य की कभी जीत नहीं हुई है। जो राष्ट्र किसी ऐसे राष्ट्र का जाने या अनजाने शोषण करता रहा है, जो जनसंख्या की दृष्टि से उससे बड़ा है, जो उससे अधिक प्राचीन और उसके जैसा ही सभ्य-सुसंस्कृत है, उस राष्ट्र के लोगों का हृदय-परिवर्तन करने के लिए चाहे जितना जोखिम क्यों न उठाना पड़े, कम ही है।''

'मानव जाति जिसे ईश्वर के नाम से जानती है, ऐसा ईश्वर तो अकथनीय है और जिसका रहस्य मानवबुद्धि नहीं पा सकती, उसके करोड़ों नामों में से एक है दरिद्रनारायण। दरिद्रनारायण का अर्थ है, गरीबों का ईश्वर, गरीबों के हृदयों में निवास करने वाला ईश्वर।' गांधीजी का यह कथन निर्विकार खड़ी सरोजिनी के मस्तिष्क में घूम रहा था।

'अत्याचारों के बढ़ने पर प्राणी-मात्र के कल्याण हेतु ईश्वर मानव-रूप में जन्म लेता है और कार्य संपन्न होते ही मानव-शरीर त्यागकर पुनः अपने स्वरूप में स्थापित हो जाता है। महात्मा गांधी भी ऐसी पुण्यात्मा थे, जो गुलामी का दंश झेलते भारतीयों के लिए वरदान बनकर आए। वे गरीबों के मसीहा थे, उनके ईश्वर थे। भारत की स्वतंत्रता के साथ ही उनके जीवन का ध्येय समाप्त हो गया और वे अपने मार्ग की ओर अग्रसर हो गए।' यही सोचकर सरोजिनी अपने व्याकुल मन को शांत करने का प्रयास कर रही थीं।

लेकिन लाख समझाने पर भी उनका हृदय भावुक हो उठता, आँखें आँसुओं से भर आतीं। कविता द्वारा गांधीजी को श्रद्धांजलि देते हुए उन्होंने लिखा था–

'वह जो शांतिदूत था,
उसे एक महान सेनानी के योग्य
संपूर्ण सम्मान के साथ,
ले जाया गया श्मशान भूमि को।
रणभूमि में सेनाओं का नेतृत्व करने वाले
सभी सेनापतियों से कहीं अधिक बड़ा था,
वह 'लघु-मानव'!
कहीं अधिक वीर, सबसे महानतम् विजेता।'

❑

21

अंतिम पड़ाव

कमला नेहरू अस्पताल का बेगम आजाद कक्ष बनकर तैयार हो चुका था। सरोजिनी नायडू की इच्छा थी कि उसका उद्घाटन-कार्य तत्कालीन गवर्नर जनरल राजगोपालाचारी के हाथों संपन्न हो। इसी सिलसिले में वे दिल्ली आई हुई थीं।

फरवरी का महीना चल रहा था, कड़ाके की ठंड ने दिल्ली को आगोश में भरा हुआ था। धुंध की मोटी परत के पीछे छिपा सूरज धरती पर झाँकने की असफल कोशिश कर रहा था। सुबह के लगभग ग्यारह बज रहे थे, सरोजिनी नायडू को लेकर कारों का एक काफिला राष्ट्रपति भवन की ओर जा रहा था।

कुछ ही देर में एक सुसज्जित कक्ष में राजगोपालाचारी और सरोजिनी की भेंट हुई। औपचारिक अभिवादन के बाद वे सार्वजनिक मुद्दों पर बात करने लगे। इसी बीच सरोजिनी ने उन्हें उत्तर प्रदेश आने का निमंत्रण दिया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। लगभग आधे घंटे तक चली इस मुलाकात के बाद विदा लेकर वे कार में बैठने लगीं।

सहसा भावी योजनाओं में खोई सरोजिनी नायडू का सिर कार की छत से टकरा गया। उनके मुख से दर्द-भरी कराहें निकल गईं; आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया। सिर को दबाते हुए वे एक ओर बैठ गईं। आनन-फानन में उन्हें अस्पताल लाया गया। निरीक्षण के बाद चिकित्सकों ने उन्हें कुछ दिन आराम करने का परामर्श दिया, लेकिन वे कहाँ सुनने वाली थीं। उन्हें स्वयं से अधिक उन कार्यों की चिंता थी, जो वे अधूरे छोड़कर आई थीं। इसलिए हिदायतों को एक ओर करते हुए वे 15 फरवरी को लखनऊ लौट गईं।

इस घटना के बाद से उनके सिर में निरंतर दर्द रहने लगा।

17 फरवरी को राजगोपालाचारी के स्वागत की तैयारियाँ करने के लिए उन्हें इलाहाबाद जाना था, लेकिन बढ़ते दर्द ने उन्हें असहाय कर दिया। अत: उन्होंने अपने स्थान पर पुत्री पद्मजा को इलाहाबाद भेज दिया।

18 फरवरी को सुबह से ही उन्हें साँस लेने में कुछ कठिनाई हो रही थी। चिकित्सकों ने तत्परता दिखाते हुए ऑक्सीजन लगा दी, जिससे उन्हें आराम मिला। उस समय वे नितांत अकेली थीं। पद्मजा इलाहाबाद जा चुकी थीं, जबकि पति और

पुत्र हैदराबाद में और पुत्री लीलामणि दिल्ली में थीं। 20 फरवरी तक उनके स्वास्थ्य में थोड़ा-बहुत सुधार हुआ, लेकिन 1 मार्च को स्थिति पुनः इतनी खराब हो गई कि उन्हें रक्त चढ़ाना पड़ा।

'मैं अब सोना चाहती हूँ'

1 मार्च, 1949, रात गहराने लगी। चारों तरफ एक अजीब-सी नीरसता छाई हुई थी। ऐसा लगता था मानो भविष्य में घटित होने वाली किसी बड़ी घटना का संकेत पाकर प्रकृति ने मौन धारण कर लिया हो। नर्स ने इंजेक्शन लगा दिया था, लेकिन सरोजिनी की आँखों से नींद कोसों दूर थी। हमेशा की तरह वे विचारों में मग्न थीं, परंतु आज न तो वे किसी आगामी कार्यक्रम के बारे में सोच रही थीं और न ही किसी अधूरे पड़े कार्य के बारे में। आज उनकी सोच का सिलसिला बीती जिंदगी की ओर मुड़ गया था। स्मृतियों के पन्ने पलटने लगीं, तो जीवन का एक-एक परिदृश्य चलचित्र की भाँति सामने आने लगा। बचपन की शरारतें, पिता का भरपूर स्नेह, माता का लाड़, भाई-बहनों का प्यार, पहली कविता, प्रेम-परिणय, गॉस का मार्गदर्शन, गोखलेजी का सान्निध्य, विभाजन, गांधीजी का बलिदान, जीवन के बहुमूल्य पल रह-रहकर याद आने लगे। सोचते-सोचते कभी होंठों पर मुसकराहट खिल जाती, तो कभी आँखें नम हो जातीं।

उनका मन भारी होने लगा। वे थोड़ी देर बैठना चाहती थीं। उन्होंने उठने का प्रयास किया, लेकिन नर्स ने पुनः लिटाते हुए धीरे से कहा, ''आपको आराम की जरूरत है। आप सोने की कोशिश कीजिए।''

''लेकिन मुझे नींद नहीं आ रही। लगता है, आज दवा भी मुझसे हार गई है।'' सरोजिनी ने मुसकराहट बिखेरते हुए कहा।

''मैंने इंजेक्शन लगा दिया है। आप आँखें बंद कर लीजिए। थोड़ी देर में नींद आ जाएगी।'' नर्स ने उत्तर दिया।

''नर्स, क्या तुम मुझे कोई गीत गाकर सुनाओगी?'' सहसा सरोजिनी ने प्रश्न किया।

नर्स विस्मित होकर बोली, ''गीत, कौन सा गीत!''

''कोई भी, जो तुम्हें अच्छा लगता हो।''

''ठीक है, लेकिन पहले आप लेट जाइए।'' यह कहकर नर्स मीठे स्वर में उन्हीं का लिखा एक गीत गाने लगी।

कक्ष में गूँजते गीत के बोल उनकी आत्मा को तृप्त कर रहे थे। अशांत मन धीरे-धीरे शांत हो रहा था। गीत समाप्त होते-होते उनकी पलकें भारी हो आईं। वे निर्देश देते हुए बोलीं, ''मुझसे कोई बात न करे। मैं बहुत थक गई हूँ। मैं अब सोना चाहती हूँ।''

कक्ष में अँधेरा करके नर्स दबे पाँव बाहर निकल गई।

2 मार्च प्रातः साढ़े तीन बजे सरोजिनी नायडू ने अंतिम साँस ली। वे सदा के लिए नींद के आगोश में सो गई थीं।

प्राण छोड़ते समय उनके होंठों पर संतुष्टि की मुसकराहट थी। ईश्वर ने जिस उद्देश्य से उन्हें संसार में भेजा था, उन्होंने निष्ठापूर्वक उसे संपन्न किया था। उनका भारत स्वतंत्र था, मातृभूमि का मस्तक गर्व से ऊँचा था, उनके दिखाए मार्ग का अनुसरण करते हुए नारी-समाज सुधार की ओर अग्रसर था। उनके देखे गए स्वप्न साकार हो उठे थे, उनकी काव्य-कल्पनाओं को आधार मिल चुका था।

अंतिम संस्कार

सरोजिनी नायडू की मृत्यु से देश भर में शोक की लहर दौड़ गई। गांधीजी की मृत्यु के बाद यह दूसरा सबसे बड़ा आघात था। उनके अंतिम दर्शन के लिए लोगों का ताँता लग गया, देश-विदेश से संवेदना-संदेश आने लगे।

सरोजिनी को लखनऊ और वहाँ की नवाबी संस्कृति से अगाध प्रेम था। अतः गोमती नदी के तट पर पूरे राजकीय सम्मान के साथ उनका अंतिम संस्कार किया गया।

उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने शोकातुर होकर कहा था, ''भारत कोकिला का स्वर सदा के लिए मौन हो गया, भारतीय काव्य का सूर्य अस्त हो गया, हम अनाथ हो गए। वे एक महान् मेधावी, जीवनीशक्ति से परिपूर्ण और मुक्त हृदय महिला थीं। वे बहुमुखी प्रतिभा की धनी थीं और इस सबने उन्हें पूर्णतया अनुपम बना दिया था। उन्होंने अपना जीवन कवयित्री के रूप में शुरू किया और बाद में जब घटनाओं की विवशता ने उन्हें उनके संपूर्ण उत्साह और तेज के साथ राष्ट्रीय आंदोलन में घसीट लिया, तो उनका समूचा जीवन एक कविता, एक गान बन गया और उन्होंने वह आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाया। जैसे राष्ट्रपिता ने राष्ट्रीय संघर्ष को नैतिक गरिमा प्रदान की थी, ठीक वैसे ही उन्होंने उसमें कलात्मकता और काव्यात्मकता का समावेश कर दिया। निस्संदेह अनंतकाल तक हम उनको स्मरण करते रहेंगे।''

महिला दिवस

सरोजिनी नायडू ने न केवल काव्य जगत् में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की, बल्कि सामाजिक जीवन में सक्रिय रहते हुए अपनी उपस्थिति को दृढ़ता से दरज करवाया। उन्होंने अपनी लेखनी द्वारा जन-साधारण को जाग्रत् करने का सफल प्रयास किया। वे सुखों को त्यागकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ीं और जीवन के अंतिम क्षण तक संघर्षरत रहीं। उनका संघर्ष कभी अंग्रेजों के विरुद्ध था, तो कभी सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध। हिंदू-मुसलिम एकता और सौहार्द्रता को महत्त्व देते हुए उन्होंने सदा उनके बीच सामंजस्य बिठाने का प्रयास किया। महिलाओं की दशा सुधारने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने जहाँ एक ओर नारी-शिक्षा का समर्थन किया, वहीं उन्हें पुरुषों के समान अधिकार दिलवाने में भी अग्रणी रहीं। नारी-उत्थान हेतु उनके सराहनीय कार्यों को देखते हुए उनका जन्मदिवस 'महिला दिवस' के रूप में घोषित किया गया।

❑

22

संस्मरण

आई विल्ट

सरोजिनी हँसमुख और विनोदी स्वभाव की महिला थीं। गंभीर वातावरण को भी हास्य-विनोद में बदल देना उन्हें खूब आता था। घटना उनके विवाह के समय की है। ब्रह्म समाज की वैवाहिक रीतियों के अंतर्गत ईसाई प्रतिज्ञाएँ दोहराई जा रही थीं।

परंपरा के अनुसार पादरी ने उनसे पूछा, ''क्या तुम इस पुरुष को पति-रूप में स्वीकार करती हो? विल्ट दाऊ टेक।''

सरोजिनी ने मुसकराते हुए प्रत्युत्तर दिया, ''आई विल्ट।''

यद्यपि विल्ट 'विल' का प्राचीन रूप है, परंतु इसका एक अर्थ 'मुरझाना' भी होता है। यहाँ विल्ट का प्रयोग सरोजिनी के विनोदी स्वभाव को इंगित करता है।

कर्मठ सरोजिनी

विश्वयुद्ध के दौरान सरोजिनी की कर्मठता का वर्णन करते हुए गांधीजी ने लिखा है, 'युद्ध प्रयासों में स्वयं को झोंकते हुए उन्होंने अपनी सारी शक्ति घायलों की सेवा-टहल, उनके लिए कपड़े तैयार करने, पट्टियाँ बनाने एवं ऊनी वस्त्र बनाने में लगा दी थी। एक दिन उन्होंने मेरे सामने ब्योंते हुए कपड़ों का ढेर लगा दिया और इन्हें सिलवाकर लौटाने को कहा। मैंने उनकी माँग का स्वागत किया तथा प्राथमिक उपचार के अपने प्रशिक्षण के दौरान मित्रों की सहायता से मैं जितने कपड़े सिलवा सकता था, उतने सिलवाता गया। उनकी कर्मठता से सभी कार्य संपन्न हो रहे थे। यदि कोई कार्य अधूरा रह जाता, तो जहाँ तक संभव होता, वे स्वयं उसे करने बैठ जाती थीं। उनके इस व्यवहार ने सभी का मन मोह लिया था।'

आशावादी दृष्टिकोण

एक बार गोपालकृष्ण गोखले और सरोजिनी नायडू सामाजिक व राजनीतिक मुद्दों पर बात कर रहे थे। सहसा गोखले ने प्रश्न किया, ''भारत के भविष्य के बारे में तुम्हारा क्या दृष्टिकोण है?''

''आशापूर्ण।'' सरोजिनी ने उत्तर दिया।

''जो समय आने वाला है, उसके विषय में तुम क्या सोचती हो?'' उन्होंने दूसरा प्रश्न किया।

सरोजिनी ने दृढ़ आस्था के साथ कहा, ''पाँच वर्ष से भी कम समय में हिंदू-मुसलिम एकता।''

गोखले उन्हें समझाते हुए बोले, ''मेरी बच्ची, तुम कवयित्री हो, लेकिन तुम बहुत अधिक आशावादी हो। तुम्हारे या मेरे जीवनकाल में यह नहीं हो पाएगा, फिर भी जहाँ तक हो सके, आस्था और आकांक्षा बनाए रखो।''

जिन्ना महान् हैं

मुसलिम लीग के अध्यक्ष मुहम्मद अली जिन्ना और सरोजिनी नायडू के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध थे। वे उनका आदर करती थीं। जिन्ना भी उन्हें भरपूर सम्मान देते थे। यद्यपि विभाजन के मुद्दे को लेकर उनके बीच मैत्री लगभग समाप्त हो गई थी, परंतु एक-दूसरे के प्रति आदर-भाव आजीवन बना रहा। इस संदर्भ में एक घटना अत्यंत उल्लेखनीय है।

सरोजिनी नायडू की जीवन-गाथा लिखने वाली पद्मिनी सेनगुप्त ने भारत के महान् नेताओं पर एक पुस्तक लिखी थी। इस बारे में जब सरोजिनी को पता चला तो उन्होंने उत्सुक होकर प्रश्न किया, ''क्या तुमने पुस्तक में जिन्ना को सम्मिलित किया है?''

''नहीं।'' पद्मिनी ने न में सिर हिलाते हुए कहा।

सरोजिनी थोड़ी नाराज होते हुए बोलीं, ''लेकिन जिन्ना एक महान् व्यक्ति हैं। तुम्हें अपनी पुस्तक में उनका उल्लेख अवश्य करना चाहिए था। उनके बिना तुम्हारी पुस्तक अधूरी है।''

हृदय से क्रांतिकारी

सामाजिक क्षेत्र में सरोजिनी नायडू नारी-उत्थान के लिए कार्यरत थीं। उनका उद्देश्य महिला-हितों को सर्वोपरि रखते हुए उन्हें सामाजिक अधिकार दिलवाना था। मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड प्रस्ताव विचारधीन था। सरोजिनी को आशंका थी कि यदि अपने पक्ष को दृढ़तापूर्वक नहीं रखा गया, तो वे महिला मताधिकार की उपेक्षा कर देंगे। अतः इंग्लैंड में वे महिला शिष्टमंडल के रूप में मांटेग्यू और

वायसराय से मिलीं तथा उन्हें एक ज्ञापन दिया, जिसमें स्वशासन की माँग के साथ-साथ महिला मताधिकार को लागू करने व लिंग-आधारित भेदभाव को समाप्त करने पर जोर दिया गया था। उन्होंने अपने पक्ष को इतनी मजबूती के साथ रखा कि मांटेग्यू भी प्रभावित हुए बिना न रह सके।

उनके महान् व्यक्तित्व पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मांटेग्यू ने लिखा था–'महिलाओं का एक दिलचस्प शिष्टमंडल मिलने आया और हमसे लड़कियों के लिए शिक्षा और मेडिकल कॉलेज की माँग की। शिष्टमंडल का नेतृत्व श्रीमती नायडू कर रही थीं। वे एक कवयित्री और बहुत ही आकर्षक तथा चतुर महिला थीं, लेकिन उनके बारे में मेरा मत है कि वे हृदय से क्रांतिकारी हैं।'

रोते को हँसाना

सन् 1921 में ब्रिटेन के राजकुमार भारत आए। ब्रिटिश अधिकारियों ने उनका भव्य स्वागत किया, परंतु भारतीय जनसमुदाय जुलूस और धरनों द्वारा उनका विरोध कर रहा था। सरकार का दमन-चक्र आरंभ हो गया। परिणामस्वरूप कई स्थानों पर बेकाबू भीड़ उपद्रव करने लगी। हिंसा और रक्तपात का दौर छिड़ गया। सरोजिनी नायडू ने तत्परता दिखाते हुए उपद्रव-स्थलों का दौरा किया और लोगों से शांत रहने की अपील की।

हिंसा से व्यथित गांधीजी ने पाँच दिन का उपवास शुरू कर दिया। ऐसे में सरोजिनी ने सामाजिक जिम्मेदारी के साथ-साथ उनकी देखरेख का भार भी सँभाल लिया। दिन-रात व्यस्त रहने के बाद भी उनके चेहरे पर थकान दिखाई नहीं देती थी।

उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करके जब वे लौटतीं, तो विभिन्न हाव-भाव तथा मुख-मुद्राओं द्वारा गांधीजी को दिन-भर का विवरण सुनातीं। उनके विनोदी हाव-भाव देखकर गांधीजी के गंभीर चेहरे पर भी मुसकराहट थिरक उठती। वे अकसर कहा करते थे, ''सरोजिनी की उपस्थिति-मात्र वातावरण को आनंद और प्रसन्नता से भर देती है। रोते को हँसाना उन्हें खूब आता है।''

मार्गदर्शन करने का अधिकार

मुहम्मद अली जिन्ना ने लंदन में भारतीय छात्रों के एक दल की स्थापना की थी। वे एक ऐसे स्थायी केंद्र बनाने के लिए प्रयासरत थे, जो लंदन के बिखरे भारतीय जीवन को संगठित कर सके। उनका उद्देश्य सहयोग और साहचर्य भावना

की सुदृढ़ परंपरा स्थापित करना था। इस नए ध्येय का शुभारंभ वे गोपालकृष्ण गोखले के मार्गदर्शन में करना चाहते थे। अत: छात्रों के एक गुट ने सरोजिनी नायडू से मिलकर गोखले को मनाने की सिफारिश की।

लेकिन गंभीर रूप से बीमार गोखले ने उनकी विनती अस्वीकार कर दी। सरोजिनी छात्रों को वचन दे चुकी थीं कि गोखले उनकी सभा में अवश्य व्याख्यान देंगे। अत: पुन: उन्हें मनाने लगीं।

बार-बार की विनती सुनकर गोखले थोड़ा चिढ़कर बोले, ''चिकित्सकों ने मुझे अनावश्यक तनाव और थकान से दूर रहने का निर्देश दिया है। तुम स्वयं ही स्वास्थ्य के नियमों का उल्लंघन नहीं करती हो, बल्कि मुझे भी उनकी अवज्ञा और द्रोह के लिए उकसा रही हो।''

''मैंने आपकी ओर से उन्हें वचन दिया है।'' सरोजिनी ने मासूमियत के साथ कहा।

''लेकिन तुम्हें क्या हक था, जो तुम मेरी ओर से वचनबद्ध हो बैठीं?''

''तरुण पीढ़ी के लिए आपसे आशा के संदेश के रूप में हर कीमत पर मार्गदर्शन करने का अधिकार।''

गोखले निरुत्तर हो गए तथा निर्धारित दिन उन्होंने छात्रों की सभा को संबोधित किया।

आत्मिक सामंजस्य

गांधीजी उम्र में सरोजिनी नायडू से लगभग दस वर्ष बड़े थे, लेकिन उनके बीच प्रगाढ़ मैत्री थी। एक-दूसरे के साथ परिहास करने का वे कोई भी अवसर नहीं चूकते थे। सरोजिनी अपने पत्रों में उन्हें 'बौना आदमी' कहकर संबोधित करती थीं और गांधीजी इन पत्रों को सराहनीय टिप्पणियों के साथ 'यंग इंडिया' में प्रकाशित कर देते थे। उन्होंने उनके परिहास का कभी बुरा नहीं माना। अपितु 'यायावर-चारण' अर्थात् घूमता चारण कहकर उन पर पलटवार करते थे। यह उनके बीच का आत्मिक सामंजस्य ही था, जिसके कारण वे परस्पर इतने निकट थे।

स्पष्टीकरण

ब्रिटिश सरकार ने प्रवासी भारतीयों के हितों के लिए दक्षिण अफ्रीकी सरकार के साथ केपटाउन समझौता किया था। इसके पीछे उसका उद्देश्य

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रियता प्राप्त करना था, लेकिन समझौते में संशोधन की आवश्यकता थी। अत: दोनों सरकारों ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के बाद तत्काल एक दूसरा सम्मेलन बुलाया। इसमें भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधिमंडल में सरोजिनी नायडू, श्रीनिवास शास्त्री, गिरजाशंकर वाजपेयी और दो यूरोपियन थे।

प्रथम बैठक में ही श्रीनिवास शास्त्री ने अविवेकपूर्वक प्रश्न पूछ लिया, ''मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि प्रतिनिधिमंडल में सरोजिनी क्यों हैं?''

''श्रीनिवास शास्त्री इसके लिए पछताएँगे कि उन्होंने इस बारे में सार्वजनिक तौर पर स्पष्टीकरण माँगा है। मैं यहाँ केवल इस कारण आई हूँ कि मेरे नेता गांधीजी को पुरुषों की बुद्धिमत्ता पर पूरा भरोसा नहीं था। अत: उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि उसको महिलाओं की चिरंतन बुद्धिमत्ता से सुदृढ़ किया जाए।''

सरोजिनी का उत्तर सुनकर शास्त्रीजी बगलें झाँकने लगे।

वास्तविक पुरुषत्व

एक बार व्याख्यान देने के लिए सरोजिनी नायडू को एक सार्वजनिक सभा में आमंत्रित किया गया। उपस्थित सभा-जन उनसे 'देश के पुरुषत्व' विषय पर विचार प्रकट करने के लिए अनुरोध कर रहे थे।

वे सभा को संबोधित करते हुए विनम्र स्वर में बोलीं–'मुझे तो विश्वास नहीं हो रहा कि मुझे यहाँ देश के पुरुषत्व के पक्ष में बोलने के लिए कहा गया है, लेकिन मैं जिस दूसरे लिंग का नेतृत्व करती हूँ, वह है उन पुरुषों की माँ, जिसे हम सबल बनाना चाहते हैं। मैं आपका आह्वान करती हूँ कि 'पुरुषत्व' का अहंकार छोड़कर महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य करें, जिससे भारत विकास की ओर अग्रसर हो सके। हिंदू, मुसलिम, ईसाई, राजपूत, पारसी मैं सब पुरुषों से अपील करूँगी कि वे महिलाओं को उनके अधिकार प्राप्त करने में सहयोग करें। यही देश के पुरुषों का वास्तविक पुरुषत्व होगा।'

हमें किसका भय

एक बार महिलाओं के दल के साथ सरोजिनी दंगाग्रस्त क्षेत्र का दौरा कर रही थीं। इस दौरान एक व्यक्ति ने उनसे पूछा था, ''दंगाइयों के लिए पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों में कोई अंतर नहीं होता। वे केवल खून के प्यासे होते हैं, लेकिन उनके सामने आप ऐसे निडर खड़ी हो जाती हैं, मानो माँ शक्ति दैत्यों के सामने। ऐसे विकट समय

में आप कैसे स्वयं को संयत रखती हैं? क्या आप असुरक्षित महसूस नहीं करतीं?''

''मत भूलिए कि हम वे औरतें हैं, जो सदियों से मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने पति, भाइयों और बेटों को युद्धभूमि में भेजती रही हैं, जो समय आने पर स्वयं का बलिदान करने से भी पीछे नहीं हटतीं, जिनके हृदय में प्रेम और स्नेह का भंडार है। यह देश हमारा है, ये लोग हमारे हैं, फिर भला अपनों के बीच हमें किसका भय हो सकता है?'' सरोजिनी ने हँसते हुए उत्तर दिया।

सत्याग्रह की परिभाषा

भारत में रोलेट एक्ट लागू हो चुका था। उसका विरोध करने के लिए गांधीजी ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया। उन दिनों इस शब्द और इसके अर्थ से साधारण लोग अनभिज्ञ थे। इसलिए मुंबई में सरोजिनी ने सत्याग्रह का उद्घोष किया, तो वहाँ के लोग थोड़े चकित-से रह गए।

उन्होंने जब सत्याग्रह के बारे में पूछा, तब सरोजिनी ने विस्तार से बताते हुए कहा था, 'आपका कर्तव्य केवल स्वतंत्रता प्राप्त करना नहीं है, बल्कि सरकार के कार्यों में अनुचित का विरोध करना भी है। अपनी दृढ़ता, साहस और संस्कारों से उसे सत्य में बदलो। अगर हममें सच्चाई है, अगर हम संस्कारों से आध्यात्मिक हैं, जैसे सत्यवादी हरिश्चंद्र थे, तो हमें सच बोलने से पीछे नहीं हटना चाहिए। हम मर जाएँगे, लेकिन सत्य बोलेंगे। महात्मा गांधी ने भी यही कहा है कि सत्य बोलो। हिंसा, क्रोध या प्रतिशोध से नहीं, बल्कि सच्चे बच्चों की तरह अंत में विजयी बनो। आओ, हम मिलकर एक ऐसी सत्य-सेना का निर्माण करें, जिसकी अंत में जीत होगी। यही सत्याग्रह की परिभाषा है।'

डूब के मर जाओ

जलियाँवाला हत्याकांड के बाद अंग्रेजों ने पंजाब में दमन का नंगा नाच किया था। उन्होंने न केवल अनेक लोगों को अकारण मौत के घाट उतार दिया, बल्कि स्त्रियों को भी सरे-बाजार अपमानित किया था। उनके अत्याचारों ने सरोजिनी नायडू को व्यथित कर दिया।

अंततः वे इंग्लैंड में अंग्रेजों को ललकारते हुए बोली थीं–'भारत में घटित हर वीभत्स मृत्यु और अत्याचार के बारे में आपको पता है, परंतु मैं यहाँ उन महिलाओं के लिए कहूँगी, जिन पर गलत आरोप लगाए गए हैं। रिपोर्ट के पन्नों को

पलटकर देखने से आपको पता चलेगा कि जिन्हें आपने आज तक कभी नहीं देखा होगा, जिनके बारे में कभी सुना नहीं होगा, जिनके चेहरों पर सूरज की रोशनी की एक किरण भी नहीं पड़ी होगी, उन महिलाओं को भरे बाजार में घसीटा गया; नंगा करके सरे-बाजार घुमाया गया। आपको क्या लगता है, औरतों पर बल-प्रदर्शन करने से आपकी विजय हो गई है? आप किसी साम्राज्य के योग्य नहीं हैं, क्योंकि आप दोषारोपण की स्थिति में हैं। आपकी आत्मा बिक चुकी है, इंसानियत मर गई है। आज आप पर खून के अनेक आरोप हैं। कोई भी राष्ट्र, जो अत्याचार करता है, वह कभी स्वतंत्र नहीं होता। आप लोगों को तो डूबकर मर जाना चाहिए।'

मोतीलाल के हस्ताक्षर

घटना सन् 1928 की है। कलकत्ता में कांग्रेस का सर्वदलीय अधिवेशन चल रहा था। इसमें मोतीलाल नेहरू ने एक प्रभावशाली भाषण दिया था, जिसे सुनकर श्रोतागण उत्साहित हो उठे। अधिवेशन समाप्ति पर एक साहसी युवक उनके पास ऑटोग्राफ लेने पहुँचा, लेकिन किसी कार्य में व्यस्त होने के कारण उन्होंने उसे टाल दिया।

युवक को निराश देखकर सरोजिनी नायडू का हृदय द्रवित हो उठा। वह तुरंत हस्तक्षेप करते हुए बोलीं, ''मोतीलालजी, उपस्थित लोगों में केवल यह युवक ऐसा है, जिसके मन को आपके विचारों ने सबसे अधिक प्रभावित किया है। आप इसे निराश नहीं कर सकते।''

उनकी बात सुनकर मोतीलाल ने चुपचाप हस्ताक्षर कर दिए।

मुक्ति में उदासीनता

सविनय अवज्ञा आंदोलन में सम्मिलित होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने देश के प्रमुख नेताओं के साथ-साथ सरोजिनी नायडू को भी बंदी बना लिया था। बाद में उनका स्वास्थ्य बिगड़ने पर उन्हें मुक्त कर दिया गया। इससे व्यथित होकर सरोजिनी ने अपने मनोभाव प्रकट करते हुए कहा था–'मुझे एकांत के उद्यान (यरवदा जेल) से केवल इसलिए निकाल दिया गया, क्योंकि मेरे स्वास्थ्य को देखकर दो पुराने चिकित्सक आशंकित हो गए थे। उन्हें भय था कि कहीं मेरे लगाए हुए फूलों के बीच ही मेरी मृत्यु न हो जाए। कर्नल आडवानी ने मुझसे कहा कि 'आप अब जेल न आएँ, हम न खतरा मोल लेंगे और न जिम्मेदारी।' परंतु मैं 'बौने'

आदमी को छोड़कर नहीं आना चाहती थी। यदि मुझे जेल में रहने दिया जाता, तो मैं वहाँ पूरा आराम कर सकती थी।'

भग्न पंख क्यों

सरोजिनी नायडू का तीसरा काव्य संग्रह 'भग्न पंख' प्रकाशित होने से पूर्व ही बुद्धिजीवियों के बीच चर्चा का विषय बन गया था। गोपालकृष्ण गोखले ने इसके विषय में उनसे पूछा था, ''तुम जैसे गीत-पंछी को भग्न-पंख क्यों होना चाहिए?''

सरोजिनी नायडू ने इसका उत्तर काव्यात्मक शैली में देते हुए लिखा था :

'प्राचीन देश को मेरे
जगा रहा फिर से जो वसंत,
आह्वान उसका मेरे उन्मत्त,
पीड़ित चित्त के प्रति जाएगा क्या?
अथवा दुर्लक्ष्य शर नियति के,
कर देंगे मौन स्पंदित स्वर
मेरे दूरगामी, कोमल, अविजित कंठ के?
या कोई निर्बल किंवा
रक्तरंजित पंख थमा अथवा थका देगा
उड़ानें मेरी, मेरी वांछाओं के उन्नत साम्राज्य की ओर?
लो देखो, उड़ती हूँ मैं,
नियत वसंत के स्वागत में
और लाँघती तारागण को अपने भग्न-पंख के बल पर!'

❑

23 महत्त्वपूर्ण व्याख्यान

सरोजिनी नायडू ने अनेक महत्त्वपूर्ण व्याख्यान देकर लोगों को जागरूक करने तथा उनमें नवचेतना का संचार करने का कार्य किया। उनके भाषण नारी-उत्थान, नारी-शिक्षा, हिंदू-मुसलिम एकता जैसे विषयों से संबंधित थे। उनके द्वारा दिए गए कुछ सारगर्भित एवं प्रगतिवादी विचारों से ओत-प्रोत भाषण निम्नलिखित हैं—

राष्ट्रीय जीवन में महिलाएँ

''मैं आप सबके सामने जो प्रस्ताव रख रही हूँ, वह तीसरे स्तर का है, लेकिन मुझे खुशी होती अगर मैं इसे प्रथम स्तर पर ला सकती। यह महिलाओं की शिक्षा के लिए है। आज हमारी सामाजिक उन्नति केवल इसलिए नहीं हो पा रही है, क्योंकि महिलाओं को पढ़ाया नहीं जाता, उनकी शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जाता।

''पहले की अपेक्षा आज कुछ बदलाव आया है, क्योंकि कुछ पुरुषों को यह बात समझ आ गई है कि नारी-शिक्षा कितनी जरूरी है। समाज में जो सती-सावित्री थीं, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित पुरुषों का पृष्ठभूमि के पीछे रहते हुए भरपूर साथ दिया था, वे महिलाएँ ही थीं। मुझे मालूम है कि आप भी यह मानते हैं, नहीं तो आज आप सब मेरे सामने न होते। मैं आपसे यह नहीं कहती कि मेरा साथ दीजिए या समझौता करें। मैं चाहती हूँ कि यहाँ उपस्थित पुरुष यह प्रण करें कि वे इसे राष्ट्र-हित में समझकर व्यक्तिगत तौर पर नारी-शिक्षा का समर्थन करेंगे। सरकार से भी मैं इसके लिए समर्थन चाहती हूँ।

मैं चाहती हूँ कि हर औरत अपने अधिकारों के लिए लड़े। पुरुष महिलाओं के साथ सहयोग करें, उनकी शिक्षा पर ध्यान दें, उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें। मैं प्रत्येक महिला से कहूँगी कि वे स्वयं शिक्षा-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें। आज की नारी को जागना होगा और आगे आकर शिक्षा के लिए पहल करनी होगी। हमें अपने पुरुषों को समझाते हुए उनकी हिम्मत बढ़ानी चाहिए। यदि हम पढ़े-लिखे होंगे तो पुरुषों की आर्थिक स्थिति को ठीक कर सकते हैं, उनका बोझ कम कर सकते हैं।

एक राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है, जब उस राष्ट्र की महिलाएँ शिक्षित होंगी। इसी आधार पर विश्व उन्नति कर सकता है। कुछ समय पहले मैं यूरोप गई

थी। वहाँ की महिलाएँ अपने ऊपर अधिक जिम्मेदारियाँ लेती हैं। वे पुरुषों की तुलना में अधिक काम करती हैं। क्यों? क्योंकि वे शिक्षित हैं। यदि वहाँ की महिलाएँ वे सारे काम कर सकती हैं, जो पुरुष कर सकता है, तो फिर हम भारतीय महिलाएँ ऐसा क्यों नहीं कर सकतीं?

आज की नारी बहुत शक्तिशाली है। यदि वह शिक्षित हो, तो पुरुष के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चल सकती है। आज दो वर्ष बाद जब मैं वापस आई हूँ, तो मुझे यह देखकर बहुत अच्छा लग रहा है कि भारतीय महिलाएँ जाग्रत् हुई हैं। मैंने यह भी देखा कि आंध्र प्रदेश में महिलाएँ पुरुषों के साथ खड़ी होकर उनकी सहायता कर रही हैं। आज प्रत्येक नारी जाग रही है और अपने हक के लिए संघर्ष कर रही है। उसे आगे बढ़ने के लिए केवल संस्कार, उपयुक्त अवसर और पुरुषों का साथ चाहिए। आज महिलाएँ पुरुषों के साथ पूरा सहयोग कर रही हैं। घर के साथ-साथ वे देश को भी चलाने की क्षमता रखती हैं। अब हमें महिलाओं की शिक्षा को लेकर व्यावहारिक होना होगा। जो कहा गया है, उसे करने का समय है। महिलाएँ शिक्षित होंगी तो यह काम आसान हो जाएगा, क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा नारी में सहने और योग्य बनने की क्षमता होती है।

आज हमारे आस-पास का वातावरण बदल रहा है; नए-नए आविष्कार हो रहे हैं; जीवन के आदर्श एवं सिद्धांत बदल रहे हैं, पुरानी मान्यताओं पर नए नियम स्थापित हो रहे हैं, लेकिन इतना सबकुछ होते हुए भी अगर कुछ नहीं बदल रहा तो वह है, नारी का स्तर। उसे मंदिर, घर, बच्चे, चूल्हे आदि से बाहर निकलने नहीं दिया जा रहा है, इसलिए हमें महिलाओं के स्तर को सुधारने के लिए बहुत कुछ करना होगा। यदि मैं कर सकती हूँ, तो प्रत्येक औरत कर सकती है।

हम कुछ ऐसा नहीं माँग रहे, जो अनुचित हो। हम केवल अपना हक माँग रहे हैं। हम कह रहे हैं कि हमें वह अवसर दिया जाए, जो हमें विकसित करे, जिससे हम राष्ट्र को चलाने वाली शक्ति बन सकें।''

(30 दिसंबर, 1915; मुंबई)

हिंदू महिलाओं का विकास

''मुझे इस सभा में आकर बहुत प्रसन्नता हो रही है। एक मनुष्य में जैसे कई परिवर्तन आते हैं, वैसे ही हम सबमें भी आए हैं। मेरी एक मित्र के पति मिस्टर रानाडे स्वीकारते हैं कि जब तक महिलाएँ विभिन्न क्षेत्रों में अपना योगदान नहीं करेंगी, तब तक कुछ भी संभव नहीं है। वह प्रत्येक गुण जो महिलाओं को प्रोत्साहित करता है,

उस पर ध्यान देना आवश्यक है।

वस्तुत: प्रश्न यह है कि क्या महिलाओं को एक श्रेष्ठ स्तर मिला है? समाज में यदि कोई परिवर्तन लाना है, तो सबसे पहले महिलाओं की एकता जरूरी है। भारत में प्रत्येक समस्या सुलझ सकती है, यदि हम उसकी जिम्मेदारी महिलाओं को सौंप दें। यदि किसी राष्ट्र को उन्नति करना है, तो उसे सर्वप्रथम महिलाओं से शुरुआत करनी चाहिए। नारी एक खिलौना नहीं, वरन् शक्ति है। आज हर घर में सीता, सावित्री और दमयंती के नाम के चर्चे क्यों हैं? क्यों इन्हें इतना पूजनीय माना जाता है? उनमें ऐसा क्या था, जो उन्हें इतना महान् बनाता है? दमयंती एक ऐसी नारी थी, जिसे मौत का कोई डर नहीं था, जबकि वह अपने पति से अलग रहती थी। उसकी आत्मिक शक्ति ने ही उसे महान् बनाया।

धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ साक्षात् भगवान् वास करते हैं। जिस घर में नारी का सम्मान नहीं होता, वहाँ लक्ष्मी कभी नहीं ठहरतीं। इसलिए हमें आत्मिक विकास की जरूरत है। एक श्रेष्ठ नारी से बढ़कर संसार में कुछ नहीं है। हमें नारी के विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जिस प्रकार एक पुरुष किसी दूसरे पुरुष से अलग है, उसी प्रकार एक नारी दूसरी नारी से अलग है। एक नारी दूसरी नारी को बहुत जल्दी प्रभावित कर लेती है, क्योंकि वह भी एक औरत है, एक माँ है, उसमें ममता का भाव है। हमें याद रखना चाहिए कि जो ताकत हजारों पुरुषों में है, वह एक नारी में भी है। इसलिए नारी को शक्ति की संज्ञा दी गई है।''

(15 जनवरी, 1916; मुंबई)

महिलाओं की मुक्ति

''नकारात्मक सोच वाले लोग सोचते हैं कि महिलाओं को शिक्षा नहीं देनी चाहिए, क्योंकि इससे वे आधुनिक बन जाती हैं, लेकिन शायद वे अपने धार्मिक ग्रंथों के बारे में भूल गए हैं। हमें तो गर्व होना चाहिए कि भारत में ऐसी महिलाएँ हैं, जो पुरुषों की तुलना में अधिक आधुनिक और निडर हैं। महाभारत और रामायण पढ़ो, जिसमें उन महिलाओं का वर्णन है, जिन्होंने पुरुषों का युद्धों में भी साथ दिया, उनके साथ वन में गईं।

आप पुरुष कहते हैं कि आपको राजनीतिक अधिकार मिलना चाहिए, क्योंकि आप इसे अकेले ही चला सकते हैं, लेकिन आप यह मत भूलिए कि एक लँगड़ा आदमी लँगड़ाकर ही चलता है। एक आँख से देखने वाले को एक ओर का

ही नजर आता है। इससे गृहस्थी की दो पहिए वाली गाड़ी कभी ठीक से नहीं चलती। आपको बस यही लगता है कि औरत खाना ही बना सकती है और उसके कोई अधिकार नहीं हैं। एक बात याद रखना, शिक्षा किसी महिला को आपसे भी अधिक समझदार और बुद्धिमान बना सकती है। एक शिक्षित नारी अपने घर को एक अशिक्षित नारी की अपेक्षा अधिक अच्छे ढंग से चला सकती है।

यूरोप में पुरुष अपने काम पर इस विश्वास से जाते हैं कि पीछे से उनकी शिक्षित औरतें घर को देख सकती हैं। जब वे ऐसा सोच और कर सकते हैं, तो आप भारतीय पुरुष ऐसा क्यों नहीं कर सकते? हमें औरतों का सम्मान करना चाहिए।

पहले समाज में परदा प्रथा पर अधिक जोर दिया जाता था, लेकिन आप यह मत भूलिए कि परदा प्रथा का मतलब दिमाग या आत्मा पर परदा करना नहीं है। अगर औरतें शिक्षित होतीं रहे, तो उन्हें परदे की जरूरत नहीं होती। वे अपनी रक्षा स्वयं कर सकती थीं।

मैं लोगों से अनुरोध करती हूँ कि आप अपने कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों को समझें। शिक्षा ही सबसे बड़ा धन है। यदि आप उनकी तरफ ध्यान देंगे, तो उसके बदले आप स्वयं को मुक्त अनुभव करेंगे। नारी आपके लिए रोशनी करेगी, जब भी आप अँधेरे में होंगे। आपकी आत्मा उसी स्थिति में आजादी अनुभव करेगी, जब नारी को आजादी मिलेगी।''

(30 मार्च, 1918; जालंधर)

भविष्य की महिलाएँ

''एक भटकते गीतकार की तरह मैं भी एक शहर से दूसरे शहर जा रही हूँ। मेरी आँखों में भी नए-नए सपने हैं, लेकिन मेरे सपने कभी टूटे या बिखरे नहीं हैं, बल्कि हमेशा मेरे दिल में उम्मीद की तरह रहते हैं। मैं जब भी महाभारत के बारे में सोचती हूँ, तो मेरे दिमाग में कौरवों-पांडवों के बारे में नहीं आता और न ही टकराती तलवारों के बारे में आता है। अगर मैं सोचती हूँ, तो पूना में स्थित उस महाविद्यालय के बारे में, जहाँ के प्रोफेसर महाभारत की शिक्षा प्रणाली पर काम कर रहे हैं।

वह स्वप्न क्या है, जो मैंने पंजाब में आकर देखा है? न मैं महान् सेनाओं के बारे में सोचती हूँ और न ही किसी युद्ध के बारे में।

पंजाब का नाम लेते ही सबसे पहले मेरे दिमाग में यहाँ की सशक्त महिलाओं के बारे में विचार उत्पन्न होते हैं। पंजाब की औरतें, जो कि पाँच नदियों के तट पर स्थित भूमि की हैं, उन्होंने मेरे यहाँ आने पर इतना अच्छा आदर-सत्कार

किया, जिसे मैं भूल नहीं सकती।

इस विद्यालय की प्रधानाचार्य, जो वास्तव में सरस्वती का रूप है, एक हिंदू विधवा महिला हैं। ग्यारह साल पहले जब वे मेरे शहर हैदराबाद में आई थीं, तो हजारों हिंदुओं और मुसलमानों के बीच खड़ी होकर उन्होंने अपने विद्यालय के बारे में अपील की थी। वह अवसर था, जब मैंने अपने मित्रों के कहने पर पहली बार भाषण दिया था। मैंने कभी नहीं सोचा था कि आज फिर ग्यारह साल बाद मैं इस विद्यालय में आकर उनके सामने व्याख्यान दूँगी।

हम अकसर देखते आ रहे हैं कि लड़कियों की शिक्षा में पिछली तीन पीढ़ियों से कोई विशेष उन्नति नहीं हुई है, लेकिन अब कुछ लोग जागे हैं। वे स्वीकारते हैं कि लड़कियों के लिए शिक्षा जरूरी है। यही कारण है कि आज हमारे देश में बहुत हद तक शिक्षित महिलाएँ हैं।

याद रखिए, औरत केवल घर का चूल्हा ही नहीं सँभाल सकती, बल्कि देश में भी अपनी शिक्षा से रोशनी कर सकती है। औरत के पास आत्मसमर्पण और स्व-अनुभूति की शक्ति है। नारी का स्वयं को पुरुष के लिए समर्पित कर देना ही उसकी सबसे बड़ी पहचान है। नारी की ये विशेषताएँ ही उसे महान् बनाती हैं। आज महिलाएँ इतनी जाग्रत् हो गई हैं कि इस भीड़ में भी उनकी संख्या 5% से अधिक है। अब वह भेदभाव नहीं रह गया। मरदाना और जनाना का विभाजन समाप्त हो गया है। अब भारत को ऐसी नारियों एवं पुरुषों की आवश्यकता है, जो एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करें। ये भविष्य की वे महिलाएँ हैं, जिन्हें जागरूक होकर राष्ट्र का नेतृत्व करना है।''

(31 मार्च, 1918; जालंधर)

शिक्षा का बीजारोपण

'कुछ दिन पहले मैं एक अंग्रेजी लेखक की पुस्तक पढ़ रही थी। उसमें वर्णित जिस बात ने मुझे बार-बार अपनी ओर आकर्षित किया, वह थी—पुस्तक में दिया गया बगीचे का वर्णन। लेखक कहता है कि जब माली बीज डालने के लिए बाग में छोटे-छोटे खड्डे करता है और उसमें बीज बोता है, तो उसके चेहरे पर एक मुसकराहट होती है। उसे मिट्टी से सने अपने कपड़े दिखाई नहीं देते। बस वह यही सोचता है कि ये बीज अंकुरित होंगे और वृक्ष बनकर फल देंगे।

उसी तरह हम सबको मिलकर पुराने विचारों को दबाना चाहिए। कुछ समय बाद हमें उसका परिणाम नजर आएगा और वह परिणाम हम सबका होगा। तो क्यों न

हम लड़कियों को स्कूल में डालें, उनकी शिक्षा पर ध्यान दें, जिससे कल हमें अच्छे परिणाम प्राप्त हों। औरत की सुंदरता में चार चाँद लग जाए, वह भी एक फूल की तरह महके। कल हमें उस तरह की नारी चाहिए, जो हर किसी का सम्मान करे; आने वाली चुनौतियों को पार कर सके। आज हमारी परीक्षा है कि कल हम किस तरह की औरत को प्रस्तुत करते हैं।

आज जब मैं इन नन्हे-नन्हे चेहरों को देखती हूँ, तो मुझे यह ये माली की याद दिलाते हैं, जो बीज बोता है, इस उम्मीद के साथ कि उसे अच्छा कल मिलेगा। उसकी मेहनत जरूर रंग लाएगी। मुझे ऐसा लगता है कि दिल से की गई मेहनत हमेशा रंग लाती है, कभी व्यर्थ नहीं जाती। हमें इनमें शिक्षा का बीजारोपण करना है जिससे भविष्य में ये अपने गुणों की सुगंध से विश्व को महका सकें।''

(10 जुलाई, 1918; चेन्नई)

भारतीय नारी को संदेश

''दोस्तो! मुझे नहीं लगता कि मेरे लिए आपसे अंग्रेजी में बात करना जरूरी है, क्योंकि मेरे विचार में आप सबको हिंदुस्तानी भाषा समझ में आती है और यदि किसी भारतीय महिला को हिंदी समझ में नहीं आती, तो यह उसकी कमी है। उसे हिंदी समझने की कोशिश करनी चाहिए, जो कि उसकी मातृभाषा है।

भारतीय नारियों को मैं एक संदेश देना चाहती हूँ। हम एक लंबे अंतराल के बाद जागे हैं। अब हम सशक्त और निडर हैं। भारतीय महिलाओं ने आजादी के लिए बहुत समझौते किए हैं और अब वे पूछती हैं कि कौन हैं अफ्रीका की औरतें, पूर्वी अफ्रीका की औरतें, दक्षिण अफ्रीका की औरतें? क्या वे हमारी तरह आजादी के लिए लड़ सकती हैं?

आप सब जानते ही होंगे कि हमारे दादा, परदादा, पूर्वज और न जाने कितनों को इस वायदे के साथ अफ्रीका लाया गया कि उन्हें काम मिलेगा, हर मानवीय अधिकार मिलेगा, रहने को स्थान मिलेगा, लेकिन कुछ ही लोगों को यह सब मिला, जबकि अधिकतर लोगों को गुलामी रास नहीं आई और उनकी मौत हो गई। इतना अन्याय किया गया आप सबके साथ और अब भारत की तीसरी पीढ़ी अन्याय को सहने की अपेक्षा मरना अधिक श्रेष्ठ समझती है।

जब महात्मा गांधी भारतीय महिलाओं के उत्थान के लिए संघर्ष कर रहे थे, तब लगभग दस साल पहले नाटाल और ट्रांसवाल की कुछ महिलाएँ उनके झंडे के नीचे आ खड़ी हुईं। वे अपने पुरुषों के लिए लड़ीं, वे अपने सम्मान के लिए लड़ीं।

आप सब जानते हैं, ये दक्षिण अफ्रीकी अधिकारी आपके विवाह को भी विवाह नहीं मानते थे। कुछ महिलाएँ इतनी मूर्ख थीं कि वे ग्रेट ब्रिटेन जाने को तैयार हो गईं, समझौते के लिए सहमत हो गईं, परंतु क्या आप जानते हैं कि किस तरह गांधीजी ने लड़ाई लड़ी और जीत हासिल की? किस तरह कानून लागू किया गया और उसे सरकार एवं उसकी नीतियों द्वारा समर्थन दिया गया?

आप अपने हक के लिए लड़ो, न्याय के लिए लड़ो! क्या आपने कभी अपने अधिकारों के बारे में सोचा है? क्या आपको सारे अधिकार मिले हैं? अपने अधिकार पाने के लिए आपके दिल साफ होने चाहिए। आपको न्याय के लिए स्वयं बोलना होगा। आपके लिए भगवान् धरती पर आकर अफ्रीकी सरकार से नहीं लड़ेंगे। अगर आप असफल हो गए, तो हमारे जीवन में शांति नहीं होगी। अपनी गलतियों को सुधारो; अपने कर्तव्यों को पूरा करो, क्योंकि आप भारतीय हैं। आपका प्रथम कर्त्तव्य है, एक साथ खड़े होना। आपको कहना चाहिए कि हम औरत हैं, हम भारतीय महिला संघ हैं और हम भारतीय महिलाओं की प्रतिनिधि बनकर विश्व के साथ खड़ी हैं। हमें गोरी महिलाओं को दिखाना है कि भारतीय नारी आखिरकार क्या है, कितनी अच्छी है भारतीय नारी, वह भारत की शान है। हमें दिखाना है कि एक भारतीय महिला दक्षिण अफ्रीका को भी विकसित कर सकती है।

औरत की बहुत सी जिम्मेदारियाँ हैं। हमें सबसे पहले यह देखना है कि हमारे बच्चे पढ़ें। इसके लिए प्रण करें कि पुरुषों से कुछ न कहकर आप स्वयं स्कूल संचालित करेंगी और अपनी लड़कियों को पढ़ाएँगी। लड़कियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देंगी, उन्हें उपेक्षित नहीं बनाएँगी। यदि हमारे पति लड़कियों को स्कूल नहीं भेजेंगे, तो हम उन्हें भेजेंगी और पढ़ाएँगी। हम अपने गहने बेच देंगी, परंतु अपनी लड़कियों को शिक्षा जरूर देंगी, जिससे कल को यदि उनका विवाह हो, तो वे अपने घर में एक संपूर्ण नारी के रूप में जाएँ।

हमें उन लोगों के बारे में भी नहीं भूलना चाहिए, जो परेशानी में हैं। चाहे वे भारतीय हों, अफ्रीकी हों या फिर कोई और। हमें देखना चाहिए कि अस्पताल बनें। औरत बहुत कोमल हृदय की होती है। उसे बीमार लोगों की मदद करनी चाहिए। हमें देखना चाहिए कि बीमार लोगों को सही चिकित्सा मिले। हमें सरकार का इंतजार छोड़कर पहले स्वयं प्रयास करना चाहिए।

आपके पति कमाते हैं, आपके पिता काम करते-करते मर गए और उन्हें इस धरती में दफना दिया गया। अब आप औरत होने के नाते इतना तो कर सकती हैं कि पति की सहायता करें और सबसे पहले अपने बच्चों को शिक्षा दें।

आप अपने पति को स्पष्ट कह दें कि यदि आप लड़ रहे हैं, तो आप मूर्ख

हैं। हम शांति से रहेंगी। यही आपका दूसरा कर्तव्य है। आदमी बेशक अलग हो सकते हैं, लेकिन औरत एक ही होती है, क्योंकि हर औरत एक माँ है। मैं कभी उम्मीद नहीं करती कि कोई औरत यह कहे कि मैं इस औरत से अलग हूँ। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप किस जाति की हैं। मैं बस इतना जानती हूँ कि आप सब एक औरत हैं। सिर्फ अपने बारे में मत सोचिए, हर औरत के अधिकार के लिए सोचिए।

स्वयं पर विश्वास करो और सोचो कि आप दक्षिण अफ्रीका को श्रेष्ठ बनाने के लिए क्या कर सकती हैं। अपने कर्तव्यों के बारे में सोचो। अपने पति का साथ दो; उनकी सहायता करो, अपने हक के लिए लड़ो।

औरत इसलिए पैदा हुई है, क्योंकि वह सशक्त है। मैं चाहती हूँ, इतिहास के पन्नों में यह लिखा जाए कि दक्षिण अफ्रीका में शांति भारतीय महिलाओं से आई है। उन्होंने विभिन्न समुदायों एवं जातियों के लोगों के बीच एकता स्थापित की है।''

(09 मार्च, 1924; दक्षिण अफ्रीका)

वास्तविक बंधुत्व

''तुम्हें पता है कि तुम बहुत ही प्रांतीय हो, लेकिन मेरी दृष्टि में तुम उससे भी अधिक सीमित हो, क्योंकि तुम्हारी सीमा सिर्फ तुम्हारे राज्य, समुदाय, तुम्हारी अपनी जाति, तुम्हारे अपने कॉलेज, तुम्हारे अपने घरों तक है। मैं जानती हूँ कि मैं सही बोल रही हूँ, क्योंकि युवावस्था में मैं भी इसी तरह सोचती थी। बहुत यात्राएँ करने के बाद, काफी कुछ समझने के बाद, उम्मीद, सहानुभूति एवं सबके प्यार से तथा हर तरह के जात-पात के लोगों से मिलकर मेरा दृष्टिकोण अब स्पष्ट है। किसी की जाति, रंग, लिंग को लेकर मैं अंधविश्वास नहीं करती। मेरे लिए कोई छोटा या बड़ा नहीं, बल्कि सब बराबर हैं। मेरे लिए किसी राजा या भिखारी में कोई अंतर नहीं है और जब तक यह भावना बच्चों में नहीं आएगी, तब तक आप भारतीय नहीं कहलाएँगे।

अब मेरी आशाएँ आप युवाओं और आने वाली पीढ़ी से है। आप सबमें वह ताकत है, वह उत्साह है, जो असंभव को भी संभव कर सकता है।

अगर आपको अवसर मिले, तो उसका लाभ जरूर उठाओ और एक इतिहास रचो, लोगों से मिलो, बाहर निकलो! जो ज्ञान लोगों से बातचीत करके मिलता है, वह किसी किताब से नहीं मिलता। आप शेली की स्वाधीनता वाली कविता पढ़ते होंगे, 'मनुष्य के बंधुत्व' पर कीट्स के व्याख्यान पढ़ते होंगे, लेकिन क्या कभी उसे व्यवहार में लाए हैं? पढ़ना एक बात है और उसे व्यवहार में लाना

एक अलग बात। हम सबने जो स्वप्न देखे हैं, उन्हें आपको पूरा करना है। हमने जो गलतियाँ की हैं, उन्हें आपको ठीक करना है। मेरे विचार में यह कोई गर्व की बात नहीं है कि आप मद्रासी हैं, दक्षिण भारतीय हैं, हिंदू हैं, ब्राह्मण हैं अथवा किसी अन्य धर्म से संबंधित हैं।

मैं बंगाली परिवार में पैदा हुई थी, मैं मद्रास प्रेसीडेंसी से संबद्ध हूँ, मेरा विवाह मुसलिम राज्य में हुआ और मैं वहाँ रही भी हूँ, लेकिन फिर भी मैं न बंगाली हूँ, न मद्रासी हूँ और न ही हैदराबादी हूँ। मैं एक भारतीय हूँ। मैं एक ऐसे घर से आई हूँ, जहाँ जात-पात का भेदभाव नहीं था, अपितु उनमें एकता थी, परस्पर प्रेम था। मेरे पिता कहते थे, 'सिर्फ एक भारतीय तक सीमित मत रहो, बल्कि गर्व अनुभव करो कि आप विश्व के नागरिक हैं।'

मैं अपने देश को बहुत प्रेम करती हूँ और इसकी उन्नति के लिए अपना पूरा जीवन दाँव पर लगा सकती हूँ।

मेरे भाइयो, मैं आप सबसे अनुरोध करती हूँ कि केवल भारत से प्रेम मत करो, आकाश तक पहुँचो, पूरे विश्व को अपना समझकर प्यार करो। आपके कंधों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है, उसे ठीक से निभाओ। इसलिए सब मिलकर राष्ट्र की उन्नति के लिए जुट जाओ। यही वास्तविक बंधुत्व है।''

(नवंबर 1903; चेन्नई)

हिंदू-मुसलिम एकता

''बहुत समय पहले जब इसलामिक सेना भारत में आई थी, तब उसने पवित्र गंगा के किनारे पर ही विश्राम किया था और अपनी तलवारों को इसके पवित्र जल में धोकर ठंडा किया था। गंगा के जलाभिषेक ने ही उन मुसलमान आक्रमणकारियों का स्वागत किया था, जो बाद में भारत की संतान बन गए।

हम लोगों में हिंदू-मुसलिम एकता को लेकर बहुत मिथ्या धारणा प्रचलित है। अगर कोई मुसलिम किसी हिंदू के प्रति अपनत्व दिखाता है, तो वे उसे धर्मद्रोही कहते हैं और यदि कोई हिंदू किसी मुसलमान के प्रति सहानुभूति दिखाता है तो उसे जाति से निष्कासित कर दिया जाता है, लेकिन इस अविश्वास का कारण क्या है?

सिर्फ एक मिथ्या धारणा है हम दोनों के बीच। हमारा ईश्वर एक है; धार्मिक ज्ञान एक समान है। एक ही अदृश्य शक्ति को दोनों पूजते हैं। अंतर केवल इतना है कि मुसलमान उसे अल्लाह कहते हैं, तो हिंदू परमेश्वर, फिर इनमें इतनी

नफरत और द्वेष क्यों है?

हम चाहते हैं कि राष्ट्रीय जीवन में उन्नति के लिए मुसलमान स्वयं में चारित्रिक विशेषताएँ लाएँ और उसमें हिंदुओं का भी पूरा योगदान हो। हम केवल हिंदू-मुसलिम के योगदान तक सीमित नहीं हैं बल्कि हम चाहते हैं कि ईसाई, सिख, पारसी और शेष अन्य सभी जातियों के लोग, जो भी इस धरती पर हैं; उनका भी पूरा योगदान हो। इसलिए कभी भी अपने दिमाग में जात-पात का विचार मत लाओ और न ही किसी को छोटा-बड़ा समझो। मातृभूमि के लिए अपना योगदान देने का सभी को समान अवसर दो।

हिंदू और मुसलमान का विशेष योगदान क्या है? हमें केवल पीछे जाकर देखना है कि उनके अपने अभिलेख, अपनी सभ्यता, अपनी संस्कृति क्या थी।

इस आधुनिक जीवन में हिंदुओं को समभाव अपनाना है। उनकी दृष्टि में सब बराबर होना चाहिए, जो विश्व को केवल उपनिषद् का स्वर न दे, बल्कि कर्तव्यनिष्ठा भी स्थापित करे। पुरुषों में राम और नारियों में सावित्री जैसी सत्यवादिता, सुदृढ़ता, हिम्मत, साहस हो। यही है हिंदू का सबसे बड़ा योगदान।

यदि हमें आगे बढ़ना है, तो शुरू से, बचपन से ही, संस्कृति को बदलना चाहिए। मुसलमानों को अपनी माताओं से महान् इतिहास और कथाओं के बारे में सुनना चाहिए, जो उन्हें प्रेरित करेगा। उन्हें अपने बच्चों को इतिहास के साथ-साथ संस्कृति परिवर्तन के बारे में बताना चाहिए। इससे हमें ज्ञान मिलेगा और हमारे बीच की यह दीवार ढह जाएगी। हमारी जीत अलग नहीं है, हमारा उद्देश्य अलग नही है, हमारा विश्वास भिन्न नहीं है। हम सबकी एक संयुक्त सीमा है, संयुक्त दु:ख हैं, संयुक्त भूख है, संयुक्त मृत्यु है। इसलिए हर किसी से सहयोग करो। दूसरों की हार को अपनी हार समझो और दूसरों की जीत को अपनी जीत, दूसरों के धर्म को अपना समझो। जब अकाल पड़ता है, सूखा पड़ता है, बाढ़ आती है, तो वह हिंदू-मुसलमान को देखकर नहीं आती, फिर हम क्यों अलग-अलग होने की बात करते हैं?

हमें हिंदू-मुसलिम के बीच एकता और सामंजस्य स्थापित करना है, स्नेह का सौहार्द्रपूर्ण संबंध बनाना है। केवल इसी आधार पर हम एक सशक्त राष्ट्र और समाज का निर्माण कर सकते हैं।''

(13 अक्तूबर, 1917; पटना)

गोखले का मिशन

''इस गर्व और उदासी से भरी 10वीं वर्षगाँठ पर भारत के हर कोने से बधाई पाकर आप खुश तो होंगे, लेकिन अपने संस्थापक एवं प्रथम अध्यक्ष की याद में श्रद्धांजलि देते हुए उदास भी होंगे। इस उत्सव पर मैं आपसे आज्ञा चाहती हूँ, जिससे गोखलेजी की याद में कुछ शब्द कह सकूँ।

मैं उनकी महानता के बारे में जितना भी बताऊँ, वह थोड़ा है। उन्होंने अपनी मृत्यु तक भी उपलब्धियाँ अर्जित कीं। मेरे लिए सबसे बड़ी बात तो यह है कि उनके हृदय में बच्चों के प्रति बहुत प्यार था। उनका दिल बच्चों की तरह था।

22 मार्च को मुझे लखनऊ में मुसलिम लीग की सभा में सम्मिलित होने का सुनहरा अवसर मिला। इस सभा में हमने हिंदू-मुसलिम पर काफी देर तक चर्चा की थी। कुछ महीने बाद मैं फिर लंदन गई। उन दिनों तबीयत खराब होने के बाद भी वे भारतीयों से संबंधित दक्षिण अफ्रीकी मुद्दों में उलझे हुए थे, परंतु समय निकालकर वे अक्सर मुझसे मिलने आया करते थे।

थोड़े समय बाद संघर्ष के लिए वे भारत लौट गए। दक्षिण अफ्रीका में कुछ भारतीय मुश्किल में थे, लेकिन उनकी तबीयत इतनी खराब हो चुकी थी कि उनके ठीक होने की कोई संभावना नहीं थी, फिर भी उन्होंने इस बिगड़ती हालत में दिसंबर के अंतिम दिनों में मुझे एक पत्र लिखा कि दक्षिण अफ्रीका में कितनी सच्चाई से भारतीयों के अधिकारों के बारे में सोचा जा रहा है।

1914 में चिकित्सकों ने उन्हें स्पष्ट शब्दों में उनके बिगड़े स्वास्थ्य के बारे में बोल दिया था, परंतु मुझे उनकी आँखों में मौत का भय कभी नजर नहीं आया। उन्हें अफसोस था, तो सिर्फ यही कि उनका भारतीयों के लिए चलाया गया अभियान अधूरा रह जाएगा।

उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में दु:ख भोगती भारतीय महिलाओं के पक्ष में बोलते हुए सहायता माँगी थी, तब उनके लिए पुरुषों ने अपना धन और औरतों ने अपने सारे गहने दे दिए थे, वे लोगों में इतने सम्मानीय और पूजनीय थे। आज वे हमारे बीच नहीं है, परंतु उनकी याद हर एक नौजवान के दिल में है।

वे बहुत साहसी और सहनशील, परंतु विरोधियों के लिए बहुत क्रोधी थे। उनमें देश के लिए कुछ कर गुजरने का जुनून था। मुझे वह एक उत्साही सेवक और जादुई स्वप्न नजर आते हैं। उन्होंने कभी अपना स्वभाव छिपाया नहीं था। वे सदैव न्याय की बात करते थे।

कुछ सप्ताह पहले कुछ बच्चे मेरे पास आए थे। वे 'गोखले स्मृति फंड' में योगदान देना चाहते हैं। वे एक सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत करना चाहते थे, वह भी उन लोगों एवं प्रतिनिधियों के सामने, जिनमें हर समुदाय के लोग एवं परदे वाली औरतें सम्मिलित थीं। गोखले के आदर्शों को प्रस्तुत करते हुए उन्होंने एक नाटक आयोजित किया, जिसमें हिंदू और मुसलिम लड़के सम्मिलित थे। तदंतर एक कविता सुनाई गई, जो उर्दू में थी। एक मुसलिम ने वह कविता लिखी थी। गोखले को बच्चों से अति लगाव था, क्योंकि उनमें वे भारत का भविष्य देखते थे। वे चाहते थे कि हिंदू-मुसलिम एक हों, एक ही आवाज उठाएँ, एक ही समर्पण से काम करें।

आप सब लोगों का इतना समय लेने के लिए मैं क्षमा माँगती हूँ, लेकिन आप सबको, जो गोखले के मिशन का एक भाग हो, देखना है कि उन्होंने जो बीज बोए हैं, क्या उनका फल हमें मिला है? युवा लोगों से हमें कल की उम्मीद है। इसलिए आप सबको मेरे साथ मिलकर देखना है कि नवयुवक ठीक मार्ग की ओर अग्रसर हों। उनमें ज्ञान, विद्वता, दूसरों के प्रति सम्मान, ईमानदारी और दयालुता हो।''

(10 जून, 1917; मुंबई)

गांधीजी का पुनर्जागरण

''अध्यक्ष महोदय, श्रीलंका के निवासियो एवं मेरे भारतीय भाइयो! जैसा कि आप जानते हैं कि मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं है। चिकित्सकों ने कहा है कि मुझे मौसम-परिवर्तन की जरूरत है। इसके लिए मुझे किसी ऐसी जगह जाना चाहिए, जहाँ न कोई मुझे जानता हो और न मैं किसी को जानती हूँ। मैंने सोचा था कि श्रीलंका मेरे लिए ठीक जगह है, क्योंकि वहाँ मुझे कोई नहीं जानता, लेकिन मैं यह भूल गई थी कि यहाँ के लोगों में अनंत ज्ञान है। जब मैं यहाँ पहुँची तो लोग मेरे स्वागत के लिए तैयार खड़े थे। वे भारत की कोकिला का इंतजार कर रहे थे।

यहाँ आने से एक दिन पूर्व मैंने अपनी मित्र कस्तूरबा को पत्र लिखकर कहा था कि जब भी तुम बापू से मिलने जेल में जाओ तो उनसे कहना, उनका संदेश हमेशा मेरे दिल में रहेगा और जब श्रीलंका के लोग मुझे कुछ बोलने को कहेंगे, तो मैं उन्हें महात्मा गांधी का संदेश सुनाऊँगी।

जैसाकि कहते हैं कि दुबले-पतले महात्मा गांधी, जिनका शरीर आधा नंगा था, वे इतने पतले थे कि कोई भी अंग्रेज उन्हें अपनी उँगलियों से मसल दें। वे आज सलाखों के पीछे हैं। वे बेशक जेल में हैं, परंतु उसकी दीवारें उनकी आवाज को नहीं दबा सकतीं। इसलिए मैं आज का विषय भारतीय पुनर्जागरण चुनती हूँ।

पुनर्जागरण क्या है? इसका अर्थ क्या है? क्या यह किसी दूसरी दुनिया का शब्द है? पुनर्जागरण का मतलब है, पुरातन का नवीकरण, फिर चाहे वह विचार हो या सामाजिक व्यवस्था।

हम भारत में कांग्रेस का इतिहास जानते हैं। हम जानते हैं कि पीढ़ी-दर-पीढ़ी कैसे गांधीजी ने लड़ाई लड़ी, संविधान की माँग की, शिक्षा की माँग की, क्योंकि वे जानते थे कि यह हमारी जरूरत है। एक के बाद एक ऐसे कई देशभक्त हुए, जिन्होंने गांधीजी का साथ दिया और अपना जीवन होम कर दिया।

सरकार ने भारतीयों के सामने बहुत चुनौतियाँ रखीं, लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि उनका जवाब कैसे दें। वे सभाएँ करते थे, विचार-विमर्श करते थे, परंतु कोई समाधान नहीं निकला, लेकिन उनमें से एक आदमी ऐसा था, जो सब समझ रहा था, लड़ने को तैयार था, चुनौतियाँ स्वीकारने को तैयार था। उसने छोटे-छोटे समूह बनाए और लोगों से बातचीत की, फिर वह भारत लौट आया, लेकिन काफी लोगों में से गोपालकृष्ण गोखले ऐसे थे, जिन्होंने उन्हें पहचान लिया और कहा, 'यह हैं मोहनदास करमचंद गांधी।'

वे भारत के कोने-कोने में गए, लेकिन हर जगह उन्हें भुखमरी, गरीबी और छुआछूत से जूझते लोग दिखाई दिए। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि जब तक भारत के लोग छुआछूत, निर्धनता, परस्पर वैमनस्य में उलझे रहेंगे, तब तक देश का स्वतंत्र होना असंभव है। उन्होंने लोगों से कहा कि वे छुआछूत तथा जात-पात का भेदभाव छोड़कर स्वयं को राष्ट्रीयता के स्तर पर लाएँ। निर्धनता के निवारण के लिए चरखे को घर-घर तक पहुँचाया और महिलाओं को सूत कातने के लिए प्रेरित किया, जिससे वे घर रहकर ही अपने परिवार के लिए आवश्यक वस्त्र तैयार कर सकें। हिंदू-मुसलिम एकता को बढ़ावा देते हुए दोनों समुदायों को कंधे-से-कंधा मिलाकर चलने के लिए प्रोत्साहित किया। यही गांधीजी का पुनर्जागरण था जिसने भारतवर्ष को एक सूत्र में पिरो दिया। उनके अथक प्रयासों का परिणाम है कि आज देश का हर नागरिक आपसी मतभेदों को भुलाकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ है। यह पुनर्जागरण सिर्फ भारत तक सीमित नहीं है, वरन् सीमाएँ लाँघकर दूसरे देशों में भी पहुँच गया है। मैं आपसे भी गांधीजी के इस पुनर्जागरण को अपनाने का अनुरोध करती हूँ।''

(अक्तूबर 1922; श्रीलंका)

□

काव्य दर्शन

24

भारत कोकिला के नाम से विख्यात सरोजिनी नायडू की तुलना ऐसे योगी से की जाती है, जो लोगों को पल-भर में सम्मोहित-सा कर देता है। उनकी वाणी और लेखनी का जादू सिर चढ़कर बोलता था। यही कारण था कि वे लोगों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती थीं। उनकी विचारोत्तेजक कविताएँ यथार्थ के मर्म को स्वयं में समेटे हुए थीं। उन्होंने प्रेम, जीवन और उदासी से संबंधित गीत लिखे।

सरोजिनी की कविताएँ कल्पनाशीलता, उत्कंठा, हर्षोल्लास तथा उदासी-भरे क्षणों को व्यक्त करते हुए विचारों को उद्वेलित करती हैं। उनमें न केवल जीवन की अल्पकालिकता और भाग्य पर गहन चिंतन किया है, बल्कि जीवन के उद्देश्य और मृत्यु के रहस्य पर भी प्रकाश डाला गया है। उनका दृष्टिकोण संकुचित न होकर विस्तार लिए हुए है। बौद्ध, हिंदुत्व, इसलाम, ईसाई–विश्व के अनेक धर्मों ने उन्हें प्रभावित किया। पौराणिक कथाओं ने आकृष्ट किया, तो उन्होंने देवी-देवताओं के लिए गाया, गोखले, गांधीजी जैसे राजनीतिक व्यक्तित्व से प्रभावित हुईं, तो उन पर लिखा। उन्होंने यदि शिखर की ऊँचाई नापी, तो तलहटी को भी महत्त्व दिया। चूड़ी बेचने वाले, पालकी ढोने वाले, नाचने-गाने वाले, बुनकर, सपेरे, मछुआरे, भिखारी, किसान आदि समाज के निम्नवर्गीय लोग भी उनकी कविताओं की विषय-वस्तु थे। उन्होंने उन पर कई कविताएँ लिखीं, जिनमें उनकी पीड़ा के साथ-साथ आनंद एवं प्रसन्नता का वर्णन किया।

समाज में प्रचलित परदा प्रथा, सती-प्रथा, बाल-विवाह आदि कुरीतियाँ भी उनकी लेखनी से बच नहीं सकीं। उन्होंने अपनी कविताओं में जीवन की सूक्ष्मता से समीक्षा की, जो विवादास्पद न होकर कलात्मकता से परिपूर्ण थीं।

काव्य के माध्यम से उन्होंने इतिहास के कई अनछुए पहलुओं को उजागर किया, फिर चाहे वह मुगल सम्राट् हुमायूँ और जुबैदा का प्रेम हो अथवा औरंगजेब की बेटी जैबुन्निशा की खूबसूरती। गोलकुंडा के मकबरों में चिरकाल से सोए हुए शासकों और उनकी रानियों के जीवन पर उन्होंने प्रकाश डाला। उनका लेखन दिल्ली के परिवर्तनशील इतिहास की ओर आकृष्ट हुआ, जो पूर्व में अनेक सफल राजाओं व शासकों की राजधानी रही थी। नल-दमयंती के रूप में पौराणिक कथाओं से उन्हें काव्य के लिए पर्याप्त सामग्री मिली। यदि स्पष्ट कहा जाए, तो उन्होंने जीवन, इतिहास, प्रकृति अर्थात् प्रत्येक पहलू पर अपनी लेखनी का रंग बिखेरा।

आदर्शवाद

सरोजिनी नायडू द्वारा लिखित राष्ट्र-प्रेम एवं देशभक्ति की कविताओं में आदर्शवाद प्रमुख था। अत्याचारी शासन के प्रति द्वेष, निरकुंश शासन का अंत, राष्ट्र का पुनर्निर्माण, स्वाधीनता की चाह, विशुद्ध एवं तीव्र आकांक्षाओं से युक्त उनकी आदर्शवादी कविताओं के महत्त्वपूर्ण आधार थे। गौरवशाली पीढ़ी के लिए उनमें एक चाह थी, देश आजाद होगा, प्रेम शासन करेगा और निरकुंशता समाप्त हो जाएगी।

मर्मवेधी, संताप और दु:ख के आवेग के साथ-साथ वसंत के गीत, उन्होंने जीवन के आनंद और शोक से युक्त गीतों की रचना की। वे स्वीकारती थीं कि दु:ख या मर्मस्पर्शी समय में न तो उनकी आत्मा विचलित होगी और न ही कोई भय होगा।

सरोजिनी का आदर्शवाद मातृभूमि की स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता एवं नवनिर्माण पर केंद्रित है। उनकी कल्पनाओं का युवा सदियों से चले आ रहे द्वेष से मुक्त है, जो आयु रहित गर्भ से नव-गौरव को जन्म देगा। उनके सपनों का भारत अंधकार में घिरे राष्ट्रों का नेतृत्त्व करने में सक्षम है, उज्ज्वल भविष्य उसे बुला रहा है। उसकी बढ़ती हुई वैभवता एवं सम्मान अपार है, लेकिन समकालीन भारतीय परिदृश्य को देखकर यह आदर्शवाद निराशा से युक्त हो जाता है।

एकता में शक्ति है, इस तथ्य को जानने-समझने वाली सरोजिनी ने लोगों के बीच एकता स्थापित करने के लिए संघर्ष किया। सार्वजनिक मंच पर खड़े होकर उन्होंने लोगों को देशभक्ति के धागे में बाँधा तथा परस्पर विद्वेष को भुलाने का आह्वान करते हुए घोषणा की–'हे मातृभूमि! हम एक हृदय हैं और तुमसे प्रेम करते हैं। हमारी आत्मा अखंडित और अविभाजित है। हम एक ही आशा, उद्देश्य और भक्ति से बँधे हुए ईश्वरीय शक्ति द्वारा पूर्वनियोजित लक्ष्य के प्रति समर्पित हैं।'

सरोजिनी को एक नई सुबह का इंतजार था। उनके अनुसार, दु:ख-भरी काली रात समाप्ति की ओर थी और राष्ट्र वर्षों की गहरी नींद के बाद जाग उठा था। आनंद और प्रसन्नता के वातावरण में आशाओं की हवाएँ चलने लगी थीं। इन सबके बीच पुनर्जीवन के लिए व्याकुल मातृभूमि स्वतंत्रता के वसंत की प्रतीक्षा कर रही थी। उन्हें विश्वास था कि स्वतंत्रता के लिए किए गए उनके परिश्रम का सुफल आने वाली पीढ़ियों को मिलेगा। बच्चों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था–'तुम अपने हाथों से उन सपनों की फसल काटोगे, जो हमने तुम्हारे जागने से पूर्व बोए थे। वे हमारी आशाओं और दु:ख के साथ पुष्ट तथा आँसुओं के साथ समृद्ध होंगे।'

सरोजिनी नायडू का आदर्शवाद वस्तुत: भविष्य के लिए वैभवता और आनंद का स्वप्न देखते हुए मौन रहकर संघर्षरत है।

उदारवाद

सरोजिनी नायडू के प्रगतिवादी एवं स्वतंत्र विचारों तथा स्पष्टवादिता को प्रकट करती उनकी कविताएँ, राजनीति और धर्म के क्षेत्र में, उदारवाद का प्रबल समर्थन करती हैं, लेकिन इसकी आड़ में उन्होंने कभी भी लोगों अथवा राजनीति के ऊपर कटाक्षपूर्ण हमला नहीं किया। उनकी कविता 'घुमक्कड़ कवि' में इसी भाईचारे का परिचय देते हुए वे कहती हैं–'सभी मनुष्य एक-दूसरे के बंधु-बांधव हैं। यह विश्व हमारा घर है।'

लेकिन राष्ट्र में फैली हुई घृणा और द्वेष देखकर उन्हें असीमित पीड़ा होती थी। उनका उत्सुक मन पुरानी लालसाओं को छोड़कर नई अभिलाषाओं से परिपूर्ण था। उनकी उदारवादी विचारधारा विधवाओं के साथ रूढ़िवादी व्यवहार के विरुद्ध थी। उनके अनुसार, नफरत के इस वातावरण में न तो प्रेम के फूल खिल सकते थे और न ही सुनहरे स्वप्न साकार हो सकते थे। विधवाओं की अतृप्त अभिलाषाओं की पीड़ा को उनका उदार मन अनुभव करता था, उनके आँसुओं के मर्म को वे समझती थीं। इसलिए उनकी सहनशीलता और प्रेम की वे प्रबल समर्थक थीं। इसके लिए वे पुरानी मान्यताओं एवं कुरीतियों का अनुसरण करने वाले लोगों की निंदा करने से भी पीछे नहीं हटती थीं।

सरोजिनी की उदारवादी कविताएँ कट्टरवाद एवं संकुचित विचारों की निंदा करते हुए धार्मिक स्वतंत्रता को अधिक महत्त्व देती थीं। विभिन्न मतों एवं धर्मों के लोगों के बीच आपसी प्रेम एवं स्नेह को देखकर उन्हें अपार प्रसन्नता होती थी।

रहस्यवाद

सरोजिनी नायडू का झुकाव रहस्यवाद की ओर था, इसका परिचय उनकी कुछ कविताओं से मिलता है। उनकी आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि ईश्वरीय शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर व्यवस्थित रूप में प्रकट करती है। 'आत्मा और परमात्मा दो होकर भी एक हैं', इस पौराणिक दर्शन के कथन में उनका विश्वास था। मनुष्य में ईश्वरीय अंश-रूप में विद्यमान आत्मा से वे प्रेम करती थीं। उनकी यह प्रवृत्ति कभी-कभी महान् दार्शनिक प्लेटो के रहस्यवाद की ओर इंगित करती है। उन्होंने स्पष्ट तौर पर कहा, 'साधारण मनुष्य के लिए ईश्वर के साथ सीधी और शीघ्र सहभागिता असंभव है। भविष्य एवं समय उनकी आँखों से ओझल है। ये सिर्फ उन्हीं लोगों के समक्ष दृष्टिगोचर होते हैं, जो आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त हैं। उपासक का

विश्वास आत्मा और परमात्मा के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है।'

'मनुष्य-प्रेम के विभिन्न रूपों को ग्रहण करने के लिए आत्मा का अन्वेषण आवश्यक है।' इस संबंध में वे राधा-कृष्ण का उदाहरण देते हुए कहती हैं कि 'कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम आत्मा के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करता है, जिसमें सम्मोहन और आत्मसमर्पण निर्णायक सत्य है। कृष्ण की बाँसुरी का माधुर्य ईश्वरीय रहस्यवाद द्वारा उसे अध्यात्म की ओर मोड़ता है।'

कविता द्वारा बौद्ध धर्म के रहस्यवाद की परत खोलते हुए वे कहती हैं, 'बौद्धों के निर्वाण सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक अदृश्य आत्मा अनंत शांति की ओर लौटती है। यह सम्मान साधारण मनुष्यों की उपलब्धियों से परे है। अपनी इच्छाओं पर विजय पाकर मन की शांति प्राप्त करने का कार्य प्रत्येक मनुष्य नहीं कर सकता।'

विद्रोह

आदर्शवाद एवं उदारवाद के साथ-साथ सरोजिनी की कविताओं में विद्रोह का स्वर मुखर हुआ। उनका विद्रोह था, भाग्यवाद के प्रचलित व्यवहार के विरुद्ध, नीरस सामाजिक रीतियों के विरुद्ध, रूढ़िवादिता के दंश के विरुद्ध; परस्पर विद्वेष एवं अलगाववाद के विरुद्ध, धर्मांधता एवं कट्टरवाद के विरुद्ध।

वस्तुत: वे एक ऐसी विद्रोही हैं, जो पिंजरे में बंद पक्षी की तरह कुरीतियों और धर्मांधता पर प्रहार करती हैं। सामाजिक जीवन में महिलाओं की दुर्दशा एवं अवनति को लेकर उनमें विद्रोह था। वे कृत्रिमवाद एवं पाखंड की विरोधी थीं। उन्होंने समाज में व्याप्त कठोरता एवं निर्दयता का गहन अवलोकन किया था। उन्हें उन नियमों से चिढ़ थी जो विधवाओं को अपमानित करते थे, उन्हें समाज से काटकर अलग जीने के लिए विवश करते थे। उन्होंने ऐसे सामाजिक रिवाजों को मानने से इनकार कर दिया, जो विधवाओं को अच्छे वस्त्र एवं आभूषण पहनने से वंचित करते थे। इस विद्रोह को उन्होंने 'शोक गीत' कविता में प्रकट किया। वे लिखती हैं, 'कठोर एवं निर्दयी व्यवहार दु:खी विधवा के हृदय को अनेक टुकड़ों में विभक्त कर देता है। उस समय उसके हृदय में उपजा विद्रोह उसके जीवन के विरुद्ध हो जाता है।'

उनका विद्रोह समाज को अंधकार से उजाले की ओर ले जाने के लिए था। वे चाहती थीं कि समाज में आमूल-चूल परिवर्तन हों और सामाजिक दोष नष्ट हो जाएँ। □

काव्य कृतियाँ

25

सरोजिनी नायडू के जीवन पर यदि दृष्टि डाली जाए, तो उनके प्रत्येक रूप में, चाहे वह माता का हो, प्रेमिका का हो, राजनीतिज्ञ का हो या समाज-सुधारक का हो, काव्य का रंग घुला हुआ था। उनके जीवन में उपलब्धियों का क्रम काव्य-सृजन के साथ आरंभ हुआ। सर्वप्रथम वे एक कवयित्री के रूप में विख्यात हुईं, तदंतर राजनीति में अपनी पहचान स्थापित की, परंतु राजनीति के उच्च शिखर पर पहुँचने के बाद भी उनके लेखन और काव्य-सृजन का सिलसिला अबाध गति से चलता रहा। यद्यपि उनके लेखन की भाषा अंग्रेजी थी, परंतु उनमें छिपा मर्म और भावनाओं का आवेग अन्य कवियों की तरह उत्कृष्ट कोटि का था। उनकी कविताएँ तीन पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुईं, 'द गोल्डन थ्रैशोल्ड' (स्वर्णिम देहरी), 'द बर्ड ऑफ टाइम' (समय का पक्षी) तथा 'ब्रोकेन विंग' (भग्न पंख)।

द गोल्डन थ्रैशोल्ड

सरोजिनी का प्रथम काव्य संग्रह 'द गोल्डन थ्रैशोल्ड' (स्वर्णिम देहरी) वर्ष 1905 में प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका ऑर्थर साइमंस ने लिखी थी। सरोजिनी ने यह पुस्तक अपने मार्गदर्शक एडमंड गॉस को समर्पित की थी। प्रकाशित होते ही पुस्तक ने कीर्तिमान स्थापित कर दिए। विश्व-प्रसिद्ध साहित्यकारों द्वारा इसे सराहा गया। लोकप्रियता के चलते वर्ष 1906, 1909, 1914 तथा 1916 में पुस्तक के संस्करण प्रकाशित हुए।

इस पुस्तक में वर्ष 1896 से 1904 की समयावधि के दौरान सरोजिनी द्वारा लिखी गई लगभग चालीस कविताएँ संगृहीत थीं, जिन्हें तीनों खंडों में बाँटा गया था, 'लोकगीत', 'संगीत के लिए गीत' तथा 'कविताएँ'।

लोकगीतों में सरोजिनी ने न केवल ऐसे गीतों की रचना की, जो साधारण लोगों द्वारा गाए जाते थे, बल्कि कुछ ऐसे गीत भी लिखे, जो समाज के विभिन्न वर्गों के बारे में जानकारी देते थे। इसके अंतर्गत उन्होंने समाज के निम्नवर्गीय लोगों के लिए गीतों की रचना की। इन लोकगीतों ने उनके राजनीतिक जीवन को शिखर तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

7 अगस्त, 1903 में सरोजिनी ने पालकी ढोने वालों के लिए एक गीत

लिखा था। यह गीत हमें भारत के उन आरंभिक दिनों की ओर ले जाता है, जब पालकी ढोने वाले गलियों का प्रमुख हिस्सा थे। सरोजिनी नायडू का पैतृक शहर हैदराबाद इनसे भरा-पूरा था। इस गीत द्वारा उन्होंने पालकी ढोने वालों की स्थिति का अत्यंत सुंदर वर्णन किया है।

'घुमक्कड़ कवि' नामक कविता में सरोजिनी ने विभिन्न स्थानों पर जाकर गीत गाने वाले भाटों का उल्लेख किया है। ये भाट सड़कों, गलियों अथवा गाँवों या शहरों में होने वाले उत्सवों, त्योहारों या विवाह के अवसर पर गीत गाकर लोगों का मनोरंजन करते थे।

भारतीय बुनकरों पर लिखी गई कविता में सरोजिनी ने मनुष्य के जन्म, जीवन और मृत्यु को प्रमुख विषय के रूप में चुना है। इसी तरह मछुआरों, सपेरों, अनाज पीसने वालों तथा किसानों के माध्यम से समाज में निम्नवर्गीय लोगों की स्थिति का उल्लेख किया।

पुस्तक के दूसरे खंड का आरंभ हुमायूँ और जुबैदा की प्रेम कहानी से हुआ है। इस गीत में सरोजिनी ने जुबैदा की सुंदरता का वर्णन करते हुए उसके प्रति हुमायूँ के प्रेम को चित्रित किया है। वे कहती हैं, 'सुदंरता के प्रति गहरा आकर्षण प्रेम है, प्रेम सुंदरता की व्याख्या में सम्मिलित है। प्रेम के बिना जीवन अपूर्ण है।' नवंबर, 1896 में लिखा गया, पतझड़ का गीत, इस खंड की दूसरी महत्त्वपूर्ण कविता है।

इसी प्रकार तृतीय खंड में हैदराबाद के निजाम पर लिखी कविता निजाम के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालती है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित ग्रंथ महाभारत में वर्णित नल-दमयंती का पौराणिक चरित्र, औरंगजेब की बेटी जैबुन्निशा की सुंदरता तथा अनेक ऐतिहासिक चरित्र इस खंड में सरोजिनी की विषय-वस्तु बने। उन्होंने अपने बच्चों पर भी कविताएँ लिखीं। मुसलिम महिलाओं में व्याप्त परदा-प्रथा को केंद्र में रखकर लिखी गई उनकी कविता इस खंड की अन्य विशेषता है।

द बर्ड ऑफ टाइम

सन् 1912 में प्रकाशित 'द बर्ड ऑफ टाइम' (समय का पक्षी) सरोजिनी का दूसरा काव्य संग्रह था। इस पुस्तक की भूमिका अंग्रेजी विचारक एवं कवि एडमंड गॉस ने लिखी थी, जिन्हें वे अपना गुरु मानती थीं। उन्होंने पुस्तक पिता अघोरनाथ तथा माता वरदा सुंदरी को समर्पित की थी। एक सौ सात पृष्ठों की इस पुस्तक में 46 कविताएँ थीं, जो चार खंडों, 'प्रेम और मृत्यु के गीत', 'वसंत के गीत', 'भारतीय लोकगीत' तथा 'जीवन के गीत' में विभाजित थीं।

प्रथम खंड की प्रथम कविता 'समय का पक्षी' जीवन के उतार-चढ़ाव, सुख-दु:ख, आशा-निराशा, विश्वास, प्रसन्नता, उदासी तथा मृत्यु का वर्णन करती है। वस्तुत: यह कविता पुस्तक में वर्णित अन्य कविताओं का संक्षिप्त सार है।

'शोकगीत' नामक कविता द्वारा नई-नवेली दुलहन के विधवा होने पर उसके मन में उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं एवं भावनाओं तथा समाज द्वारा उसके प्रति किए जाने वाले निष्ठुर व्यवहार को सरोजिनी ने बखूबी चित्रित किया है। वे कहती हैं, 'रूढ़िवादिता के कारण विधवा चूड़ियाँ नहीं पहन सकती, हाथों में मेहंदी नहीं लगा सकती, होंठ लाल नहीं कर सकती, बालों में फूल नहीं लगा सकती। यद्यपि समाज उसकी सुंदरता और यौवन को नहीं भूला है, तथापि इन सबसे बढ़कर वह एक विधवा है, लेकिन क्या यह उसका दोष है कि वह विधवा है? समाज के पास इसका उत्तर नहीं है। सामाजिक रीति-रिवाजों एवं नियमों को मानने वाला समाज उसकी कोमल भावनाओं को कुचल देता है।' वे आगे कहती है, 'मनुष्य और स्त्री को एक समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। समाज को चाहिए कि वह उनकी भावनाओं को समझने का प्रयास करे।'

'गोधूलि' नामक कविता में एक ओर गोलकुंडा का उल्लेख किया गया है, वहीं दूसरी ओर 'राजपूत का प्रेम-गीत' कविता में राजा अमरसिंह और पार्वती का प्रेम वर्णित है। इसी क्रम में वर्णित 'पारसी प्रेम-गीत' का आधार पारसी रहस्यवाद से लिया गया है।

पुस्तक का दूसरा खंड 'वसंत' नामक गीत से आरंभ हुआ है। इस कविता में सरोजिनी ने वसंत के मौसम में प्राकृतिक छटा का मनमोहक चित्र खींचा है। इसके अंतर्गत उन्होंने वसंत के मनमोहक दृश्यों, वृक्षों, फूलों, पक्षियों, मंदिरों की घंटियों तथा भारतीय युगल प्रेमी का वर्णन किया है।

'वसंत पंचमी' गीत में सरोजिनी कहती हैं, 'वसंत पंचमी वसंत ऋतु का त्योहार है। इस अवसर पर हिंदू युवतियाँ दीपक प्रज्वलित करती हैं तथा नई फसलें वसंत की देवी को आमंत्रित करती हैं, लेकिन विधवाएँ इसमें सम्मिलित नहीं होतीं। उनके भाग्य में उदासी, संताप और घोर तप है।' विधवा लीलावती इस कविता की केंद्र-बिंदु है। संपूर्ण कविता उसके चारों ओर घूमती है।

इसी क्रम में 'फूलों का समय', 'चंपक फूल', 'अति आनंद' आदि कविताएँ हैं जो वसंत के विभिन्न पहलुओं पर लिखी गई हैं।

लोकगीतों के खंड में 'ग्रामीण गीत', 'आँगन की जाली से', 'हैदराबाद के बाजार में', 'चूड़ी वाले' जैसे गीत सम्मिलित हैं। 'हैदराबाद के बाजार में' सरोजिनी ने बाजार की सुंदरता में प्रणय-संबंधी रंगों को बिखेरा है। कविता में हैदराबाद के

बाजारों को मुगल शासकों द्वारा स्थापित किए गए मीना बाजारों की तरह सुंदर एवं भव्य दर्शाया गया है।

'नागों का उत्सव' में हिंदुओं के प्राचीन त्योहार नाग पंचमी का वर्णन है। इस अवसर पर मंदिरों को सजाने, सपेरों द्वारा बीन बजाकर साँपों का नाच दिखाने आदि के बारे में उन्होंने विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार, 'साँप नदी की तरह वेगवान, गिरती हुई ओस की बूँदों की तरह नि:शब्द, विद्युत् की तरह तेज और सूर्य की तरह शानदार होते हैं। सामान्यत: वे ज्ञान, उर्वरता, उदारता और पाताल लोक के खजाने का प्रतीक हैं।'

'ग्वालिन राधा का गीत' कृष्ण के प्रति राधा के प्रेम को प्रदर्शित करता है। इसमें सरोजिनी ने मथुरा की प्राकृतिक छटा का मनमोहक वर्णन करते हुए मिलन के लिए व्यग्र राधा की स्थिति का उल्लेख किया है।

पुस्तक के चौथे और अंतिम खंड में जीवन से संबंधित गीतों का संकलन है। 'मृत्यु व जीवन', 'हुसैन सागर', 'आत्मा की प्रार्थना', 'रात में', 'प्रेम का राष्ट्रगान', 'एकांत', 'भाग्य को चुनौती' आदि प्रमुख कविताएँ इस खंड की विशेषता हैं।

द ब्रोकेन विंग

सन् 1917 में सरोजिनी नायडू का तीसरा काव्य संग्रह 'द ब्रोकेन विंग' (भग्न पंख) के नाम से प्रकाशित हुआ। उनके जीवनकाल में प्रकाशित होने वाली यह अंतिम पुस्तक थी। इसके अंतर्गत सम्मिलित की गई कविताओं को सरोजिनी 'प्रेम, मृत्यु और भाग्य के गीत' कहती थीं। ये सभी कविताएँ सन् 1915 से 1916 के बीच लिखी गई थीं। यद्यपि पहले प्रकाशित दोनों पुस्तकों के विपरीत इसमें लोकगीत नहीं थे, लेकिन गीतों की संख्या उनकी अपेक्षा अधिक थी। चार खंडों में विभाजित इस पुस्तक के पहले खंड में तेईस, दूसरे खंड में छ:, तीसरे खंड में आठ और चौथे खंड में चौबीस कविताएँ थीं।

आरंभिक दोनों काव्य संग्रहों की तरह यह पुस्तक भी अत्यंत लोकप्रिय हुई। इसमें संगृहीत कविताओं ने राष्ट्रकवि टैगोर को कितना अधिक प्रभावित किया था, इसका उल्लेख उन्होंने सरोजिनी को लिखे एक पत्र द्वारा किया। पत्र के अनुसार–

'प्रिय श्रीमती नायडू!

क्या आप मुझे अपने मन का भेद खोलने की अनुमति देंगी? आपके अंतिम

संग्रह में आपकी कविताओं को पढ़ते समय अंग्रेजी काव्य के पराए गगन में उड़ान भरने के लिए अपने 'भग्न पंख' की चेतना मेरे मन में पुनः प्रबल हो उठी। आपकी सहज गेयता और उन विदेशी शब्दों के बीच, जो आपके लिए मित्रवत् हो गए हैं, आपके चिंतन के प्रत्येक चरण की गरिमा के प्रति मेरे मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है, लेकिन यह जानकर मेरा हृदय स्वाभिमान से भर उठा है कि निजी अधिकार के बूते पर आपने पश्चिम के प्रसिद्ध साहित्यकारों के बीच अपना स्थान बना लिया है। इस प्रकार हमारी मातृभूमि पर छाई हुई अपमान की काली घटा को छिन्न-भिन्न कर डाला है।

'ब्रोकेन विंग' में आपकी कविताएँ जुलाई की शाम के उन बादलों की तरह, जो सूर्यास्त की धुँधली लालिमा से चमक उठते हैं, आँसुओं की आग से निर्मित प्रतीत होती हैं।'

स्क्रैप्ट्रड फ्लूट

सरोजिनी नायडू के तीनों काव्य संग्रह विश्व-भर में चर्चा के विषय बन गए थे। उनकी लोकप्रियता देखते हुए सन् 1937 में 'स्क्रैप्ट्रड फ्लूट' (रजतमंडित वंशी) नामक पुस्तक-रूप में तीनों को एक साथ प्रकाशित किया गया। पुस्तक की भूमिका अमेरिका के अंग्रेजी साहित्यकार एवं आलोचक जोसेफ ऑसलांडर ने लिखी थी।

अपने विचार प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा था–'इस महिला को भारत के वर्तमान कवियों में श्रेष्ठतम माना जाता है। यह कहना विरोधाभास-सा लगेगा, किंतु वे एक भावप्रवण दार्शनिक हैं। आदि से अंत तक वे गीतकार हैं, गीतों की गायिका हैं। कीट्स की भाँति उन्होंने प्रायः जीवन भर अस्वस्थता भोगी है। इसका बोध उनके गीतों के ताने-बाने में व्याप्त एक विलक्षण प्रकार की उत्तप्तता में होता है। उनकी कविताएँ दहकती हैं, उनमें ऊष्मा है। जब वे चिड़ियों की तरह गाती हैं, तब ऐसा लगता है कि आवाज अतल आकांक्षा की गहरी गुफा में से आ रही है। उनके गीत क्षणभंगुर नहीं हैं, जैसे कि वनपंखी के गीत। ये सत्य की भाँति शाश्वत हैं और उनका पक्षी-संगीत सदा सत्य रहेगा। वे महज लिखने के लिए नहीं लिखतीं। उनके काव्य में कृत्रिमता नहीं है। उनके गीतों में उनका हृदय मुखरित है।'

❑❑❑